शेर

भारत के जंगली जीव

लेखक .
श्रीराम शर्मा

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय
भारत सरकार

प्रथम मुद्रण—वैशाख 1883 (अप्रैल 1961)
पुनर्मुद्रण—फाल्गुन 1885 (मार्च 1964)

मूल्य : तीन रुपये 50 नए पैसे

, प्रकाशन विभाग, पुराना सचिवालय, दिल्ली-6, द्वारा प्रकाशित
बन्धक, भारत सरकार मुद्रणालय, फरीदाबाद, द्वारा मुद्रित ।

प्रस्तावना

जीव-जन्तुओं का विषय बालक, युवा और वृद्ध—सभी को रुचिकर होता है । मदारी की डुगी सुन कर भालू और बन्दर का तमाशा देखने के लिए लोगों की भीड़ लग जाती है । जब कही कोई सरकस आता है, तब लोगों को शेर, चीते और अन्य जानवरों को देखने की प्रबल इच्छा होती है । जिस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार के जीव-जन्तु होते हैं, उसी प्रकार उनका रहन-सहन, भोजन, निवास-स्थान और डीलडौल भी बड़े विचित्र होते हैं । ऊंट हिमालय में क्यों नही होता और कस्तूरी मृग राजस्थान और सहारा की मरुभूमि में क्यों नही पाया जाता ? शेर के शरीर पर धारियां और बाघ-पर चकत्ते क्यों होते हैं ? गिरगिट रंग क्यों बदला करता है ? इन सब प्रश्नों के उत्तर विज्ञान, सृष्टि-रचना और भौगोलिक परिस्थितियों से सम्बन्धित हैं ।

जीव-जन्तुओं के स्वभाव और उनके भोजन-प्राप्ति के ढंग भी बड़े ही अनोखे होते हैं । हाथी का सूड में पानी भर कर मुंह में उंडेलना, कुत्ते का लप-लप कर पानी पीना और गाय-भैंस का मनुष्य की भांति पानी पीना कितना कौतूहलपूर्ण है । शेर बैल को एक ही थाप में मार देता है, पर यदि शेर को गाड़ी में जोत दिया जाए, तो क्या उससे भारी गाड़ी दस-बीस गज भी खिचेगी ? कबूतर, गौरैया और कौआ अपने-अपने बच्चों को चुग्गा देते हैं, पर मुर्गी, चकोर और मोर के बच्चे

से वह ऐसा ही लिख रहा है। इस पुस्तक में भी इनके लिए बाघ शब्द का ही प्रयोग किया गया है। इस पुस्तक को लेखक ने जंगली जानवरों सम्बन्धी अपने गत चालीस वर्षों के अनुभवों के आधार पर लिखा है, और 'रायल नेचुरल हिस्ट्री', 'वूड्स नेचुरल हिस्ट्री', सैमुअल बेकर की 'वाइल्ड बीस्ट्स ऐण्ड देयर वेज', डा० घोरपड़े की 'इण्डियन स्नेक्स', आदि पुस्तकों से भी सहायता ली है।

आशा है, यह प्रवेशिका इस विषय के गहन अध्ययन के प्रारम्भ में उपयोगी सिद्ध होगी।

विजया दशमी
30-9-1960

—श्रीराम शर्मा

जीव-जन्तुओं का वर्गीकरण

अपने देश के जंगली जानवरों के विषय में साधारण तथा रोचक परिचय देने से पूर्व यह आवश्यक है कि इस पुस्तक के पाठकों को मोटे तौर पर यह बता दिया जाए कि क्या जीव-जन्तुओं के वर्गों का विभाजन किया जा सकता है । जंगली जानवरों के गहन अध्ययन से पहले प्रारम्भिक ज्ञान के लिए यह आवश्यक प्रतीत होता है कि बालक यह जान लें कि अमुक पशु किस श्रेणी का है ।

जीव-जन्तुओं का विषय प्राणिशास्त्र (जूलोजी) के अन्तर्गत है, इसलिए उनका वर्गीकरण वैज्ञानिक दृष्टि से ही लाभदायक और उपयुक्त होगा । पर अपने देश के जंगली जानवरों के सम्बन्ध में इस प्रारम्भिक पुस्तक मे जीव-जन्तुओं के वर्गीकरण को सीधे-सादे ढंग से दिया जाएगा । वैज्ञानिक और शरीर-रचना सम्बन्धी कठिन बातों को बिल्कुल छोड़ दिया जाएगा । जीव-जन्तुओं के वर्गीकरण का विषय इस दृष्टि से बड़ा ही रोचक और उपादेय है ।

सरलता के लिए जीव-जन्तुओं को, उनके शरीर की बनावट के अनुसार, दो भागों में विभक्त कर सकते हैं । एक तो वे, जिनके रीढ होती है और दूसरे वे, जिनके रीढ़ नही होती । रीढ़दारों के पांच विभाग हैं :

1. दूध पिलाने वाले—ये अपने बच्चों को दूध पिलाते हैं और इनके हृदय के चार भाग होते हैं ।

2. **पक्षी**—इनके पर होते हैं और ये अपने बच्चों को, जो अण्डों से निकलते हैं, दूध नहीं पिलाते।

3. **रेंगने वाले**—इनका खून ठंडा होता है और इनके हृदय में केवल तीन ही कोठरियां होती हैं।

4. **फुदकने वाले**—ये रेंगने वालों के समान होते हैं, परन्तु अपनी असली अवस्था पर आने तक इनके आकार में, मेंढक की भांति परिवर्तन होता है।

5. **मछलियां**—ये पानी में रहती हैं और गलफड़ों से सांस लेती हैं। इनके हृदय में दो कोठरियां होती हैं।

बिना रीढ़ वालों के तीन विभाग हैं:

1. **कोषधारी**—इनके शरीर नरम होते हैं और ये एक कोष में होते हैं—जैसे, घोंघा।

2. **कीड़े-मकोड़े**—इनके छः टांगें और दो अथवा चार पंख होते हैं और इनका शरीर ख़ानों का बना होता है—जैसे, तितली।

3. **कवचधारी**—इनके शरीर पर कड़ा कवचा-सा चढ़ा रहता है—जैसे, केंकड़ा।

परन्तु इन विभागों के भी अनेक उप-विभाग हैं। उदाहरण के लिए, दूध पिलाने वालों में शिकार करने वाले जन्तुओं की श्रेणी है। हम उनको उनके दांतों की बनावट से पहचानते हैं। उनके दांत चबाने के लिए नहीं, वरन् हड्डियों से मांस नोचने, तोड़ने और ' ाड़ने के लिए

वनाए गए हैं । इसी प्रकार, कीड़े-मकोड़ो के विभाग में गुवरीलो की श्रेणी है ।

असल में, श्रेणी एक छोटा विभाग है और विभाग एक छोटा समुदाय है । अत. उपर्युक्त वर्गीकरण भी पर्याप्त नही है, क्योकि शिकारी जन्तुओं में ही अनेक ऐसे हैं, जो एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न है । उदाहरण के लिए, चरख (हायना) शेर से, लोमडी भेडिए से और भालू बाघ से विल्कुल भिन्न होते है । इसलिए प्रत्येक श्रेणी छोटे-छोटे वर्गो में विभाजित है, जिनको परिवार कहते है । इस प्रकार, शिकारी जन्तु-श्रेणी में बिल्ली और कुत्ते है । यदि बाघ का कोई वर्णन-वर्गीकरण पूछे, तो हम कह सकते हैं कि बाघ बिल्ली के परिवार का है, वह शिकारी पशुओं की श्रेणी मे है, स्तनपोषी विभाग में है और उस वड़े समुदाय में है, जो रीढ़दार कहलाता है ।

बाघ रीढ़दार समुदाय में है, पर रीढ़दार समुदाय में नाका, गाय, कबूतर, भेड़िया, आदि भी है, इसलिए नाका, गाय, कबूतर और भेड़िया तथा बाघ का समुदाय एक ही है । पर पाचों का विभाग एक नहीं है । नाका और कबूतर स्तनपोषी नही है । वे अडे देते है । भेड़िया, गाय और बाघ स्तनपोषी विभाग में हैं, इसलिए तीनों एक समुदाय में और एक ही विभाग में हैं, पर उनकी श्रेणी एक नहीं है । वाघ और भेड़िया एक ही श्रेणी—शिकारी पशुओं की श्रेणी—में हैं, इसलिए वाघ और भेड़िया एक ही समुदाय, एक ही विभाग और एक ही श्रेणी के हुए । पर वे एक ही परिवार के नही है । बाघ बिल्ली के परिवार का है और भेड़िया कुत्ते के परिवार का, अत. हम कह सकते है कि बाघ और भेड़िया एक ही समुदाय—रीढ़दार—मे है,

एक ही विभाग—स्तनपोषी—में हैं और एक ही श्रेणी—शिकारी पशुओं की श्रेणी—में हैं, पर बाघ बिल्ली के परिवार का है और भेड़िया कुत्ते के परिवार का ।

रीढ़दार और बिना रीढ़ वालों में मुख्य भेद यह है कि प्रत्येक रीढ़दार के हड्डियां और रीढ़ होती है और बिना रीढ़ वालों के हड्डियों का ढांचा नहीं होता । यदि बकरे की खाल निकाल ली जाए और मांस अलग कर दिया जाए, तो शेष हड्डियों का ढांचा ही रह जाएगा । यह बात प्रत्येक रीढ़दार के लिए लागू है । बिना रीढ़ वालों का कड़ा भाग शरीर का ऊपरी भाग ही होता है—जैसे, केंकड़े का । बहुतों के तो कड़ा भाग होता ही नहीं । दूसरा मुख्य भेद इन दोनों में यह है कि रीढ़दार की अधिक-से-अधिक चार भुजाएं—हाथ और पैर—होती हैं । बिना रीढ़ वालों की अनेक भुजाएं—हाथ-पैर—होती हैं । तीसरा मुख्य भेद हृदय सम्बन्धी है । प्रत्येक रीढ़दार का हृदय स्पष्ट होता है और बिना रीढ़ वालों के नहीं होता ।

यद्यपि दूध पिलाने वालों में भी आकार, भोजन और रहन-सहन की दृष्टि से बहुत अन्तर होता है, तथापि उनमें कुछ बातें समान होती हैं । वे अपने बच्चों को दूध पिलाते हैं । उनका खून गरम होता है, जो चतुष्कोष्ठ हृदय से शरीर में चक्कर लगाता है । तीसरी मुख्य बात यह है कि वे फेफड़े द्वारा हवा से सांस लेते हैं ।

स्तनपोषी—दूध पिलाने वाले—जानवर ग्यारह श्रेणियों में विभाजित हैं :

1. वानर—बन्दर, लंगूर, गोरिला, इत्यादि;
2. मांसाहारी—शेर, बाघ, इत्यादि;

3. सुमदार और खुरदार—घोड़ा, गेंडा, भेड़, इत्यादि;
4. स्तनपोषी मच्छ पशु—ह्वेल,
5. सिरीन—सील;
6. चमगादड़;
7. कीड़ा-भक्षक—कीड़े खाने वाले—जैसे, छछूदर;
8. कुतरने वाले—जैसे, चूहे;
9. दंतरहित पशु—जैसे, स्लोथ;
10 थैलेदार—जो अपने बच्चों को जन्म के उपरान्त कुछ दिनों के लिए अपने पेट से बाहर वाले थैले में रखते हैं—जैसे, कंगारू;
11 अंडे रखने वाले पशु—जैसे, ओरिन्थो राइनक्स ।

विषय-सूची

गीर सिंह

सिह, जिसका वर्णन हिन्दुग्रों के धर्मग्रन्थों में है, ग्रब भारत में नहीं पाया जाता। सिह को 'केसरी' भी कहते हैं, क्योंकि सिह की गरदन पर केसर, यानी ग्रयाल (बाल) होते हैं। सिह का रंग बादामी ग्रौर मटमैला होता है। इससे प्रकट है कि वह रेतीले ग्रौर घास के मैदानों का पशु है। यों, घने जंगलों में वह थोड़ी दूर चला जाए, पर उसका ग्रसली निवास, जैसा कि उसके रंग से प्रकट होता है, घास का इलाका है। वह उन पहाड़ियों में भी मिलता है, जहां सघन जंगल नहीं हैं। भारत में वह कब लुप्त हो गया ग्रौर क्यों हो गया, इसका कोई ठीक लेखा-जोखा नहीं, पर इसमें सन्देह नहीं कि ग्राबादी के बढ़ने, घास के इलाके खत्म होने ग्रौर शेर (टाइगर)

के आगमन से वह इस देश से खत्म हुआ। घने जंगलों से उसे शेर ने मार भगाया। जंगलों से भगाए जाने पर वह आदमखोर हो गया और फलतः वह आदमी का शिकार बना। स्व० महाराज ग्वालियर ने अफ्रीका से कुछ सिंह मंगवा कर अपने जंगलों में छोड़े थे, पर जंगलों में शेरों ने उनकी दुर्गति कर दी और जंगलों के बाहर सिंहों ने गांव वालों और उनके पालतू जानवरों को खाना शुरू किया। नतीजा यह हुआ कि इतना आश्रय मिलने पर भी वे भारत में टिक न सके।

सिंह को 'शेर बबर' भी कहते हैं और अब वे बहुतायत से अफ्रीका में पाए जाते हैं। वे आठ-आठ, दस-दस तक की टोली में रहते हैं। प्रतिदिन वे बंधे समय पर दहाड़ते हैं। जमीन से मुंह लगा कर जब वे दहाड़ते हैं, तब आसपास के जानवर कांप जाते हैं और उनमें भगदड़ मच जाती है। सिंह को तब उन्हें पकड़ने में बड़ी आसानी होती है। सिंह आदमखोर भी हो जाते हैं और फिर वे इतना परेशान करते हैं कि आदमी के काम में बड़ी बाधा पड़ती है। अफ्रीका के मसाई जाति के लोग घेरा बांध कर हाथों में भाले और चमड़े की ढाल लेकर उनका शिकार करते हैं। वे सिंह को घेरे में घेर लेते हैं। जब सिंह तड़प कर आक्रमण करता है, तब मसाई लोगों के भाले एकदम उसमें घुस जाते हैं और सिंह तड़प कर, सिकुड़ कर, विंधे भालों से गिर जाता है।

स्थान-विशेष के कारण सिंह के रंग में अन्तर भी आ जाता है। उदाहरण के लिए, अफ्रीका के गैम्बिया क्षेत्र के सिंहों का रंग कुछ काला होता है। पर उन सबके स्वभाव एक-से ही होते हैं। सिंहों का शिकार मारने का ढंग शेरों का-सा ही होता है।

हमारे देश में जो सिंह अब पाए जाते हैं, वे अफ्रीकी सिंह नहीं, वरन् गीर सिंह हैं और अफ्रीकी सिंहों से भिन्न हैं। गीर सिंहों की गरदन पर केसर नहीं होते, आकार भी उनका छोटा होता है और वजन भी अफ्रीकी सिंह से कम होता है। वे अफ्रीकी सिंह-जैसे खूंखार भी नहीं होते और शेर से बहुत कम ताकतवर होते हैं।

भारत सरकार ने गीर सिंह को सुरक्षित कर दिया है। अब उनको बिना आज्ञा कोई मार नहीं सकता। उनकी संख्या यों ही कम है। अनुमानतः, गीर सिंह काठियावाड़ के गीर पहाड़ों में दो सौ से अधिक नहीं होंगे। कभी-कभी वे आबू पहाड़ और उदयपुर तक चले जाते हैं। भारत सरकार की सुरक्षा से वे बच गए हैं, अन्यथा गीर सिंह भी भारत से लुप्त हो गए होते।
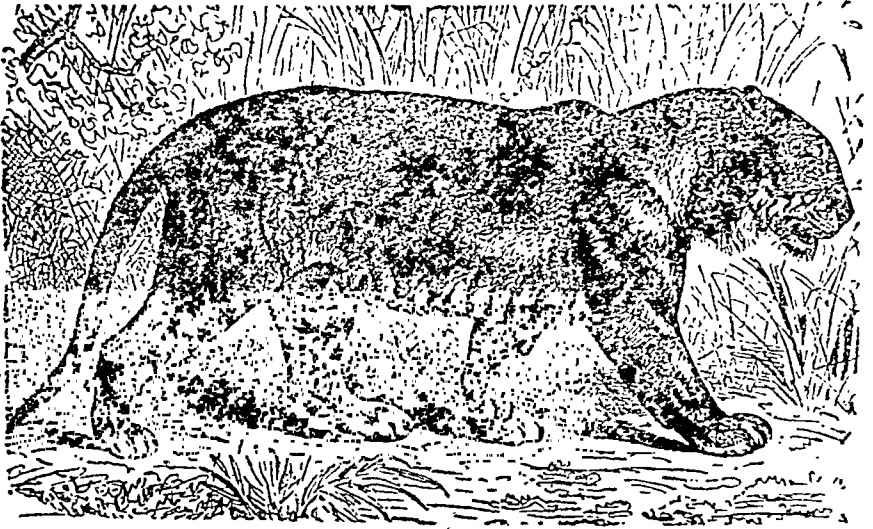
शेर

शेर, जिसे अंग्रेज़ी में 'टाइगर' कहते हैं, एक प्रकार से एशियाई जानवर है और यह बहुत खूबसूरत, सुडौल, सुगठित, शक्तिपुंज तथा साहसी होता है। शेर का रंग बादामी होता है, जिस पर आड़ी-आड़ी धारियां होती हैं। पूंछ का रंग भी बादामी होता है, जो काली गड़ारियों से भरी रहती हैं। कान का बाहरी भाग काला होता है, जिस पर सफेद चित्ता पड़ा होता है। छाती के नीचे शेर का रंग सफेद होता है।

एशिया में एक प्रकार से चार तरह के शेर होते हैं। मंचूरियन शेर, भारतीय शेर, ईरानी शेर और मलय-शेर। इन सबके स्वभाव एक-से होते हैं, पर रंग और आकार में कुछ भेद होता है। मंचूरियन शेर

का समूर कुछ अधिक बड़ा और मुलायम होता है। ईरानी शेर और मलय का शेर कुछ छोटे होते हैं और इनका रंग कुछ गहरा बादामी और धारियां अधिक काली होती हैं।

शेर के रंग से प्रतीत होता है कि वह घने जंगलों का जानवर है, जहां बादल और धूप निकल कर छिप जाते हैं। सिंह और शेर में आकार और रंग का भी भेद होता है। शेर की पूछ इकसार बिल्ली की-सी होती है और सिंह की पूछ पर बालों का गुच्छा होता है। अपने केसर के कारण सिंह शानदार जरूर जंचता है, पर ताकत, मर मिटने की प्रवृत्ति और क्रोध में शेर सिंह से कहीं आगे है। कई बार एक-सी उमर और स्वास्थ्य वाले सिंह और शेर में कुश्ती कराई गई। उन कुश्तियों में प्राय: शेर ही जीता। भयंकर क्रोध में आकर शेर का आक्रमण इतना विकट होता है कि वह सिंह को पछाड़ कर फाड़ डालता है।

जवान और स्वस्थ शेर की लम्बाई नाक से पूंछ की जड़ तक साढ़े-पांच फुट से साढ़े-छ: फुट तक होती है। अधिक शिकार खेले जाने के कारण अब शेर पहले जैसे बड़े और लम्बे नहीं मिलते। पहले कुल 12 फुट तक के शेर मिल जाते, पर अब साढ़े-नौ और दस फुट तक के शेर का मिलना भी सौभाग्य माना जाता है। जवान शेर का वजन 350 पौंड से लगा कर 500 पौंड तक होता है। ऊंचाई के हिसाब से शेर की लम्बाई अधिक होती है—ऊंचा वह केवल साढ़े-तीन फुट ही होता है।

शेरनी दो वर्ष में एक बार दो से लेकर छ: तक बच्चे देती है। उसके बच्चा देने का यों तो कोई विशेष समय नहीं है, फिर

भी जाड़ों और गर्मियों के प्रारम्भ में उसके बच्चे पाए जाते हैं। शेर झुण्ड में नहीं रहते। वे जोड़े में पाए जाते हैं और अकेले भी रहते हैं। बच्चे मां के साथ तब तक रहते हैं, जब तक शेरनी फिर बच्चे न दे। तब तक शेरनी उनको शिकार खेलना और जंगल की अन्य बातें सिखा देती है।

भारत में शेर का आगमन आर्यों के आगमन के बाद ही हुआ। बाद के संस्कृत ग्रन्थों में इसे व्याघ्र कहा गया है। देहात तथा विभिन्न स्थानों में इसे बाघ और चीता भी कहते हैं, पर यहां हम इसे शेर ही कहेंगे। रीवां में सफेद शेर भी पाया जाता है। उसका रंग बादामी न होकर सफेद होता है और धारियां अस्पष्ट-सी होती हैं। भारत में जहां-जहां सघन वन हैं, वहां-वहां शेर हैं। दक्षिण-भारत में मैसूर, बम्बई का इलाका, मध्य प्रदेश, उड़ीसा का कुछ भाग, बंगाल, असम, बिहार, उत्तर प्रदेश, राजस्थान के कुछ भाग और उत्तर प्रदेश की तराई में शेर पाया जाता है। तराई से लगा कर हिमालय में 6-7 हज़ार फुट की लम्बाई तक यह मिलता है।

शेर का इतना अधिक शिकार होता है कि इस बात की आशंका होती है कि भारतीय जंगल की यह शान मिट न जाए। यह खयाल गलत है कि शेर उत्तर प्रदेश की तराई के इलाके में तथा अन्य इलाकों में भरा पड़ा है। भारत सरकार ने नैनीताल, देहरादून और सहारनपुर के बीच के जंगलों में कुछ स्थान सुरक्षित कर दिए हैं, जहां शिकार खेलना वर्जित है। समय पाकर शायद वे स्थान दक्षिण-अफ्रीका के क्रूगर पार्क के समान विकसित हो जाएं। जब ऐसा

हो जाएगा, तब भारत की वनश्री को असली हालत में देखने का मौका साधारण आदमी को भी मिल सकेगा ।

शेर शक्तिपुंज है और यदि उसे हटा दिया जाए, तो भारतीय जंगलों का सबसे बड़ा आकर्षण ही मिट जाए । शेर की शक्ति का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि वह बात-की-बात में बड़े-से-बड़े भैंसे को मार देता है । शेर की थाप अगर किसी पहलवान की खोपड़ी पर पड़ जाए, तो उसका सिर उसके धड़ के भीतर घुस जाएगा । उछल कर या मौका पाकर वह अपने शिकार की गरदन के नीचे मुह लगा देता है और अगले पंजे पीठ पर कीलों की तरह गाड़ देता है । कीलें गड़ाने के साथ ही वह शिकार की गरदन विद्युत्गति से घुमा देता है, जिससे गरदन टूट जाती है । मामूली गाय को तो वह ऐसे मुंह में उठा ले जाता है, जैसे बिल्ली चूहे और चिड़िया को मुंह में दाब कर भाग जाती है । इसके अतिरिक्त, उसके पुट्ठों में गजब की ताकत होती है । वह पहाड की ऊंची चढ़ाई पर भारी-से-भारी भैंसे को खीच ले जाता है । मामूली गाय को वह फुटबाल की तरह 6-6 गज फेंक देता है । बढिया बैलों की जोड़ी को—जो साठ मन लदी गाड़ी को आसानी से खीच ले जाती है—शेर बात-की-बात में मार देता है, पर शेर गाड़ी नही खींच सकता । शेर के पुट्ठों में भयंकर धक्का देने की ताकत होती है—भार वहन की ताकत शेर में नही होती ।

शेर को प्रति दिन भोजन नही मिलता और उसके लिए उसे बड़ा परिश्रम करना पड़ता है—प्रति रात 10-10, 15-15 मील चल कर जाना पड़ता है । सप्ताह में दो मोटे-ताजे बैल वह आराम

से मार कर खा लेता है। पर बैल और भैंसे पर वह आक्रमण तभी करता है, जब नील गाय, सूअर, हिरन आदि उसे नहीं मिल पाते। बहुत भूखा होने पर तो वह बन्दर, सेही और खरगोश तक खा जाता है।

आम धारणा है कि शेर अपना मारा शिकार ही खाता है, पर बात ऐसी नहीं है। मरा और सड़ा मांस तो इसलिए अप्राप्य होता है कि दिन में गीध और रात में सियार उसे नहीं छोड़ते। अपना शिकार मारने के बाद या तो शेर उसे वहीं खाता है या सुरक्षित स्थान में ले जाता है। भर पेट खाने के बाद शिकार के अवशेष को वह ढंक कर रख देता है और प्रायः पास की किसी घनी झाड़ी में ही लेट कर उसकी रखवाली करता रहता है। साधारणतया शिकार खा लेने के बाद शेर पानी पीने काफी दूर भी चला जाता है और सायंकाल फिर लौट कर आता है।

शेर का शिकार बड़ा ही मनोरंजक और उत्तेजनापूर्ण होता है। साधन-सम्पन्न और अमीर लोग उसका शिकार हांके से खेलते हैं। शेर के निकलने के स्थान पर भैंस का पड़रा-कटरा बांध देते हैं और जब शेर उसको मार कर कुछ भाग खा जाता है, तब अगले दिन उचित स्थान पर मचान बना कर शिकारी छिप कर बैठ जाते हैं या फिर अनुमान लगा कर हांका किया जाता है। हांके का तरीका यह होता है कि कनस्तर, ढोल और पटाखे छोड़े जाते हैं। शेर को शोरगुल बिल्कुल पसन्द नहीं है। अगर शेर मचान के रास्ते से इधर-उधर जाता है, तो पेड़ पर बैठे लोग खट-खट करते हैं, ताकि वह मचान की ओर ही जाए। मचान पर से शिकारी उसे देखते ही मार देते हैं। तराई में हाथियों पर बैठ कर भी शिकार होता है। हांका होता

है और घास के भीतर से खाली फायर करके शेर निकाला जाता है। कभी-कभी क्रोधित शेर हाथी पर भयंकर आक्रमण करता है और माथे से मांस नोच ले जाता है। सधे हुए हाथी ही हांके में ठीक सन्तुलन रख पाते हैं। भारत के भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न समय पर शेर का शिकार खेला जाता है। उत्तर प्रदेश और तराई के इलाकों में जाड़ों में शेर का शिकार अच्छा होता है और मध्य प्रदेश में गरमियों में। गरमियों में पानी सीमित स्थानों में मिलता है, पेड़ों से पत्ते गिर जाते हैं, जिन पर शेर के चलने की आहट मालूम हो जाती है। कभी-कभी दंतैल सूअर से शेर की मुठभेड़ हो जाती है। सूअर सूरमा होता है। अपनी पीठ पहाड़ी या झाड़ी की बगल में करके खड़ा हो जाता है। शेर सूअर पर सामने से सीधा आक्रमण नहीं कर सकता अन्यथा सूअर की कांपें शेर का पेट फाड़ दें। कभी-कभी तो सायंकाल से प्रातःकाल के चार बजे तक सूअर और शेर का द्वन्द्व चलता रहता है, पर दिन निकलने पर सूअर अपने छिपने के स्थान को भागने लगता है और तब शेर पीछे से झपट्टा मार कर उसे मार डालता है। हाथी के अकेले बच्चे को भी शेर मार कर खा जाता है। जंगल में बड़े हाथी से शेर और शेर से हाथी बचते हैं। ऐसी भी घटनाएं हैं, जब दो शेरों ने मिल कर एक बड़ा हाथी मार डाला है।

शेर आदमखोर भी हो जाते हैं। उनके आदमखोर होने के दो विशेष कारण हैं। जब कोई शेर घायल हो जाता है और उसका कोई अंग कमजोर पड़ जाता है, तब वह गाय-बैल आसानी से नहीं मार सकता। ऐसी हालत में वह आदमखोर बन जाता है। दूसरा कारण है, सेही। सेही पर जब शेर आक्रमण करता है, तो सेही के

से मार कर खा लेता है। पर बैल और भैंसे पर वह आक्रमण तभी करता है, जब नील गाय, सूअर, हिरन आदि उसे नहीं मिल पाते। बहुत भूखा होने पर तो वह बन्दर, सेही और खरगोश तक खा जाता है।

आम धारणा है कि शेर अपना मारा शिकार ही खाता है, पर बात ऐसी नहीं है। मरा और सड़ा मांस तो इसलिए अप्राप्य होता है कि दिन में गीध और रात में सियार उसे नहीं छोड़ते। अपना शिकार मारने के बाद या तो शेर उसे वहीं खाता है या सुरक्षित स्थान में ले जाता है। भर पेट खाने के बाद शिकार के अवशेष को वह ढंक कर रख देता है और प्रायः पास की किसी घनी झाड़ी में ही लेट कर उसकी रखवाली करता रहता है। साधारणतया शिकार खा लेने के बाद शेर पानी पीने काफी दूर भी चला जाता है और सायंकाल फिर लौट कर आता है।

शेर का शिकार बड़ा ही मनोरंजक और उत्तेजनापूर्ण होता है। साधन-सम्पन्न और अमीर लोग उसका शिकार हांके से खेलते हैं। शेर के निकलने के स्थान पर भैंस का पड़रा-कटरा बांध देते हैं और जब शेर उसको मार कर कुछ भाग खा जाता है, तब अगले दिन उचित स्थान पर मचान बना कर शिकारी छिप कर बैठ जाते हैं या फिर अनुमान लगा कर हांका किया जाता है। हांके का तरीका यह होता है कि कनस्तर, ढोल और पटाखे छोड़े जाते हैं। शेर को शोरगुल बिल्कुल पसन्द नहीं है। अगर शेर मचान के रास्ते से इधर-उधर जाता है, तो पेड़ पर बैठे लोग खट-खट करते हैं, ताकि वह मचान की ओर ही जाए। मचान पर से शिकारी उसे देखते ही मार देते हैं। तराई के इलाके में हाथियों पर बैठ कर भी शिकार होता है। हांका होता

बाघ या तेंदुआ

अंग्रेजी में जिसे हम 'लैपर्ड' या 'पैंथर' कहते हैं, उसे हिन्दी में बाघ, तेंदुआ या गुलदार कहते हैं। बहुतों का खयाल है कि लैपर्ड और पैंथर दो अलग-अलग नस्लें हैं, पर वे असल में एक ही हैं। छोटे बाघ को लैपर्ड और बड़े को पैंथर कह देते हैं। जिस जानवर का पेट अच्छी तरह नहीं भर पाता, उसका आकार छोटा रह जाता है और जंगल में मजे से रहने वाला मोटा-ताजा हो जाता है। यदि सौन्दर्य-प्रतियोगिता के लिए जंगल के सम्पूर्ण जानवरों की नुमाइश की जाए, तो सुन्दरता का प्रथम पुरस्कार बाघ को ही मिलेगा।

कांटे उसके पंजों या टांगों में घुस जाते हैं । सेही के कांटे गलते नहीं हैं, जैसे बबूल के या लकड़ी की फांस गल जाती है—वे वहीं बने रहते हैं और घाव में पीब पड़ जाती है । तब शेर का वह भाग निकम्मा हो जाता है और वह मजबूर होकर आदमियों जैसे कमज़ोर शिकार को पकड़ना शुरू कर देता है । शेरनी भी ऐसे ही आदमखोर हो जाती है । पर शेरनी का आदमखोर होना अधिक खतरनाक होता है, क्योंकि वह अपने छोटे बच्चों को भी आदमी का मांस खाना सिखा देती है और उस स्वाद को वे इतना पसन्द करते हैं कि बचपन से ही आदमखोर हो जाते हैं । कोई भी समझदार शिकारी इसी कारण घायल शेर को बिना मारे नहीं छोड़ता । वैसे शेर आदमी से घबराता है और यदि शेरनी के साथ बच्चे न हों, तो वह भी आदमी से कतराती है ।

वह बहुत पसन्द करता है। चट्टानें और झाड़ीदार इलाका, जहां कहीं-कहीं पेड़ हों, बाघ के लिए सबसे उपयुक्त स्थान है। जिस पेड़ के नीचे घास कम हो, उस पर रहना वह पसन्द करता है और चीतल, हिरन आदि जब चरने आते हैं, तो कूद कर उनका शिकार करता है। अपने शिकार को जबड़ों से पकड़ कर सबसे पहले वह उसकी गरदन तोड़ने का प्रयत्न करता है। भेड, बकरी, कुत्ता, घोडा, गाय, बैल, मोर, मुर्गी और खरगोश बाघ की खुराक हैं। बड़ा बाघ तो भैंस को भी मार देता है।

बाघ के आकार में बड़ा भेद होता है। पांच फुट से छः फुट तक लम्बाई साधारण आकार है। बड़ा बाघ पूछ सहित आठ फुट लम्बा भी पाया गया है। पूंछ शरीर के अनुपात से बडी होती है—किसी-किसी बाघ के तीन फुट से भी अधिक होती है*। शेर तो शिकार केवल भूख बुझाने की खातिर ही करता है और पेट भर जाने पर फिर किसी को नही मारता, पर बाघ भूखा न होने पर भी मारने की खातिर ही मारता है। कभी-कभी भेड़ों के बाड़े में घुस कर 15-15, 20-20 भेड़ें मार कर और थोड़ा-सा खून पीकर ही वह छोड़ जाता है। अपने मारे शिकार को वह गिद्धों और सियारों से बचाने के लिए पेड़ों पर भी टांग कर रखता है। शेर को पानी मे बैठना और स्नान करना पसन्द है, पर बाघ पानी से बचता है और मजबूरी मे ही नदियां पार करता है। इतना चालाक होने पर भी वह इतना निडर है कि यदि उसके शिकार पर लालटेन रख कर शिकारी दूर छिप कर बैठा

*लेखक ने टिहरी-गढवाल में एक बाघ 7 फुट 9 इच का मारा था, जो पहाडी गावों के निवासियों की भैंसे तक मार कर खा जाता था।

बाघ के बदन का रंग हल्का बादामी या हल्का भूरा होता है, जिसमें सुर्खी मिली सफेदी होती है। छाती का रंग बिल्कुल सफेद होता है और सारे बदन पर गोल चित्तियां होती हैं। सर, पैर, पेट और पेट के निचले भाग की चित्तियां तो बिल्कुल काली होती हैं, पर पीठ और पूंछ के दोनों बगल के चित्ते छल्ले जैसे होते हैं, जिनके बीच का रंग पीला होता है। बाघ के बच्चे भूरे रंग के होते हैं और उनके बदन के चकत्ते प्रारम्भ में हल्के रंग के और अपेक्षाकृत छोटे होते हैं।

शेर जिस प्रकार घने जंगल और लम्बी घास का जानवर है, उसी तरह बाघ अपने चकत्ते और रंग के हिसाब से झाड़ियों और चट्टानों का पशु है। यों तो वह घने जंगलों में भी रहता है, पर उसके लिए थोड़ी-सी जगह में भी अपने आपको छिपा लेना बड़ी आसान बात है। बाघ शेर की अपेक्षा कहीं अधिक चालाक और धूर्त है और इस दृष्टि से उसे जंगल का चाणक्य कह सकते हैं। अपने मरे शिकार पर वह दुबारा एकदम नहीं आता—बहुत दूर से चक्कर लगाना शुरू करता है और चक्कर के घेरे को घटाता हुआ, पेड़ों के ऊपर, चारों तरफ देखता हुआ आता है और तनिक भी सन्देह हो जाने पर फिर नहीं आता। बाघ यों तो बहुत सतर्क रहता है, पर मौका पड़ने पर वह बहादुर भी बड़ा होता है। पहले तो वह आदमी से बचता ही है पर घायल अवस्था में क्रोधित होकर वह हाथी पर हमला करने से भी नहीं चूकता। फुर्ती का तो बाघ पुतला है—लम्बी छलांगें मारना और बहुत तेज़ दौड़ना उसके लिए साधारण बातें हैं। बाघ पेड़ पर चढ़ने में भी बड़ा प्रवीण होता है और बात-की-बात में पेड़ पर जा बैठता है। दुफंकी या तिफंकी शाखाओं पर आराम करना

वह बहुत पसन्द करता है। चट्टानें और झाड़ीदार इलाका, जहां कहीं-कहीं पेड़ हों, बाघ के लिए सबसे उपयुक्त स्थान है। जिस पेड़ के नीचे घास कम हो, उस पर रहना वह पसन्द करता है और चीतल, हिरन आदि जब चरने आते हैं, तो कूद कर उनका शिकार करता है। अपने शिकार को जबड़ों से पकड़ कर सबसे पहले वह उसकी गरदन तोड़ने का प्रयत्न करता है। भेड़ बकरी, कुत्ता, घोड़ा, गाय, बैल, मोर, मुर्गी और खरगोश बाघ की खुराक है। बड़ा बाघ तो भैंस को भी मार देता है।

बाघ के आकार में बड़ा भेद होता है। पांच फुट से छः फुट तक लम्बाई साधारण आकार है। बड़ा बाघ पूंछ सहित आठ फुट लम्बा भी पाया गया है। पूंछ शरीर के अनुपात में बड़ी होती है—किसी-किसी बाघ के तीन फुट से भी अधिक होती है*। शेर तो शिकार केवल भूख बुझाने की खातिर ही करता है और पेट भर जाने पर फिर किसी को नहीं मारता, पर बाघ भूखा न होने पर भी मारने की खातिर ही मारता है। कभी-कभी भेड़ों के बाड़े में घुस कर 15-15, 20-20 भेड़ें मार कर और थोड़ा-सा खून पीकर ही वह छोड़ जाता है। अपने मारे शिकार को वह गिद्धों और सियारों से बचाने के लिए पेड़ों पर भी टांग कर रखता है। शेर को पानी में बैठना और स्नान करना पसन्द है, पर बाघ पानी से बचता है और मजबूरी में ही नदियां पार करता है। इतना चालाक होने पर भी वह इतना निडर है कि यदि उसके शिकार पर लालटेन रख कर शिकारी दूर छिप कर बैठा

*लेखक ने टिहरी-गढ़वाल में एक बाघ 7 फुट 9 इंच का मारा था, जो पहाड़ी गावों के निवासियों की भैंसें तक मार कर खा जाता था।

रहें, तब भी बाघ लालटेन की रोशनी में अपने शिकार पर आ जाता है।

हमारे देश में बाघ पंजाब के मैदानी इलाकों को छोड़ कर सब जगह पाया जाता है। अपनी चालाकी के कारण उसके भारत से मिटने की कोई आशंका नहीं है। छावनियों, गांवों और कैम्पों से वह मालिकों के देखते-देखते कुत्ते उठा ले जाता है। बाघ इतने वेग से आक्रमण करता है और थाप मार कर कुत्ते को इतनी दूर फेंक देता है कि कुत्ता मर जाता है। तब वह उसे मुंह में दबा कर भाग जाता है। जब बाघ पेड़ पर लंगूर का शिकार करता है, तो देखते ही बनता है। एक डाली से दूसरी डाली पर कूद कर वह लंगूर को घबरा देता है। तब लंगूर पेड़ से नीचे कूद पड़ता है और बाघ एकदम उसके ऊपर टूट पड़ता है। कभी-कभी पेड़ के नीचे से ही गुर्रा कर वह लंगूर को डरा देता है और लंगूर पेड़ से नीचे आ गिरता है।

शेर से कहीं अधिक चालाक बाघ जब आदमखोर हो जाता है, तब उसका शिकार करना बड़ा कठिन होता है, क्योंकि तब आदमी के सम्पर्क से वह और अधिक चालाक हो जाता है। आदमखोर बाघ शेर की भांति दुबारा मार पर नहीं आता और जिस क्षेत्र में मार करता है, उस क्षेत्र में आतंक मचा देता है। बाघ के शिकार और उसके आदमखोर होने की घटनाएं इतनी अधिक और रोमांचकारी हैं कि यदि वे लिपिबद्ध की जाएं, तो एक बड़ी पुस्तक तैयार हो जाए।

बाघिन एक बार में दो से चार तक बच्चे देती है। बाघों की सूंघने की शक्ति विशेष तीव्र नहीं होती, पर दृष्टि और श्रवण-शक्ति भयंकर रूप से तेज होती है।
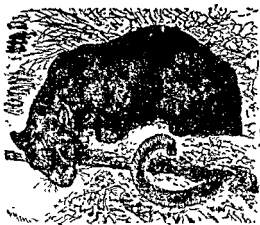
काला बाघ

चिड़ियाघरों में काला बाघ प्राय: देखा जाता है और लोगों का खयाल है कि यह कोई नई नस्ल है। पर यह कोई नई नस्ल नही वरन् प्रकृति का एक अजूबा है, क्योंकि एक ही बाघिन कभी-कभी एक ही साथ पीला बच्चा भी देती है और काला बच्चा भी। काले बच्चे पर भी चकत्ते होते हैं। काले बाघ की खाल भीगे काले रेशम जैसी लगती है। दक्षिण भारत में काले बाघ अधिक पाए जाते है। पीले और काले बाघ के स्वभाव में कोई अन्तर नही होता, क्योंकि वे एक ही हैं।

हिम बाघ

यह बाघ लद्दाख, हिमाचल प्रदेश क उत्तरी भाग, टिहरी-गढ़वाल और कुमाऊं के बर्फ से ढंके क्षेत्र में पाया जाता है। इसे 'बर्फीले क्षेत्र का बाघ' भी कहते हैं। जिस क्षेत्र में यह रहता है, उसमें पेड़ कम
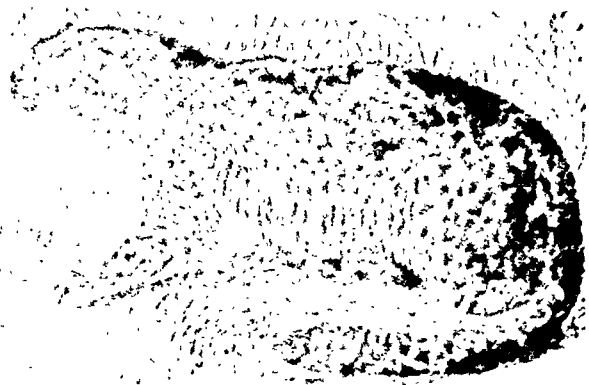
होती है। इस बाघ [illegible] ऊंचाई में दो फुट होता है, पूंछ साधारण बाघ जैसी तीन फुट लम्बी, पर [illegible] साधारण बाघ से भिन्न होता है क्योंकि यह [illegible] इलाके में रहता है अतः [illegible] भिन्न [illegible] होता है: [illegible] पश्मीने जैसा कोमल और मुलायम सा होता है। इसका [illegible] जंगली भेड़ है। जाड़ों में यह हिमालय पर 6-7 हजार फुट की ऊंचाई तक उतर आता है, पर गर्मी पड़ते ही 16-17 हजार फुट की ऊंचाई पर चला जाता है।

वृक्ष बाघ

वृक्ष बाघ (क्लाउडेड लैपर्ड) प्राय: पेड़ पर ही रहता है और वृक्षों पर रहने वाले पक्षी, खरगोश और बन्दर आदि खाता है। यह पेड़ के नीचे भी छोटे-मोटे शिकार करता है। इसकी टांगें कुछ छोटी होती हैं, इसलिए यह लम्बा मालूम पड़ता है। भारत में यह केवल सिक्किम, भूटान तथा असम में पाया जाता है।

गीर सिह

या तेंदुआ

प या तेंदुआ

चीता
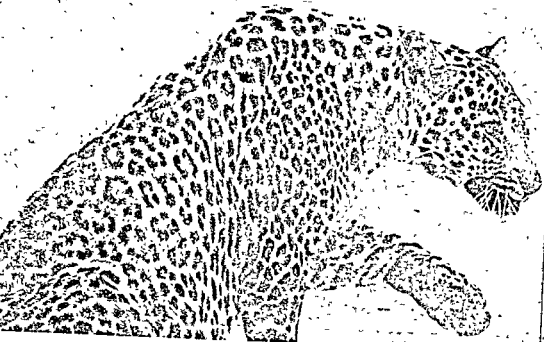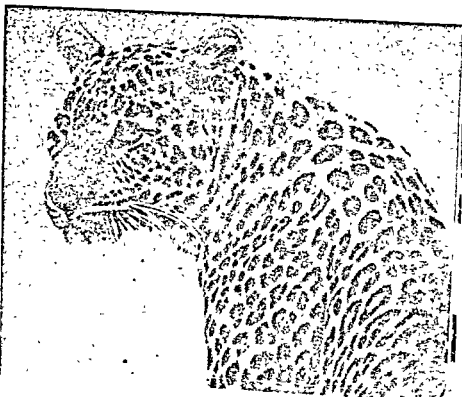
चीता को अंग्रेजी में 'हंटिंग लैपर्ड' या 'चीता' ही कहते हैं। यह बाघ से भिन्न होता है। इसकी टांगें भी बाघ से लम्बी और पतली होती हैं। इसका सिर छोटा होता है और शरीर पतला। इसके नाखून भी बाघ, सिंह, शेर और बिल्ली की भांति ही बिल्कुल अन्दर नहीं जाते।

चीते की लम्बाई नाक से पूंछ तक 7 फुट होती है, जिसमें से अकेली पूंछ ढाई फुट लम्बी होती है। चीते की ऊंचाई ढाई से पौने-तीन फुट तक होती है। इसके शरीर का रंग कभी-कभी ललछौंह बादामी और कभी भूरापन लिए पिलछौंह होता है। चीते के सारे शरीर

पर बड़ी-बड़ी काली चित्तियां होती हैं। छाती और पेट का रंग हल्का होता है, पर चित्तियां वहां भी होती हैं। चीते की चित्तियां बाघ जैसी छल्लेदार न होकर बिन्दियों जैसी होती हैं। हां, पूंछ की चित्तियां छोर पर जाते-जाते अधूरे छल्ले-सी हो जाती हैं और पूंछ का सिरा सफेद होता है। चीते के कान जड़ में कलछौंह और बाहर काले होते हैं। बस, यों समझना चाहिए, मानो बड़े ताजी कुत्ते को बघेरे का-सा जामा पहना दिया गया हो।

बाघ को पालना खतरनाक है, क्योंकि वह धोखेबाज़ होता है और मालिक पर भी हमला कर देता है पर चीता आसानी से पाला जा सकता है। यह अफ्रीका, स्याम, ईराक, ईरान, बलूचिस्तान और भारत में पाया जाता है। भारत में भी यह बंगाल, मलाबार तट और गंगा के उत्तर में नहीं पाया जाता। ऐसा प्रतीत होता है कि घने जंगल, ऊंची घास और बड़ी घासों के क्षेत्र इसके लिए उपयुक्त नहीं होते।

भारत में चीते की संख्या तेजी से घट रही है। काले हिरन के शिकार के लिए अमीर लोग चीता पाला करते हैं। शिकार के शौकीन साधारण लोग भी इसे पालते हैं। अपनी प्राकृतिक अवस्था में यह काले हिरन और नील गाय का शिकार खेलता है। झाड़ियों तथा अन्य आड़ के सहारे पेट के बल लुक-छिप कर यह जाता है और जब शिकार 150-200 गज़ रह जाता है, तब यह बिजली की-सी गति से आक्रमण करता है और काले हिरन जैसे तेज़ दौड़ने वाले को भी [illegible] में ही पकड़ लेता है। तीन सौ, चार सौ गज़ की दूरी के [illegible] अधिक तेज़ दौड़ने वाला कोई जानवर नहीं है। काला [illegible] तेज़ दौड़ता है और सूखे इलाके में कोई घुड़सवार या

ताजी कुत्ता भी उसको नहीं पकड़ सकता, पर चीता काले हिरन को भी पकड़ लेता है। कारण यह है कि चीता, बाघ, सिंह और शेर पहली ही छलांग में बिजली से चलने वाली रेल के समान अपनी पूरी गति पर आ जाते है, जबकि हिरन आदि जानवरों को तेजी पकड़ने में कुछ समय लगता है।

बैलगाड़ी में पिंजरा रख कर या बिना पिंजरे के ही चीते की आंखों पर पट्टी बांध दी जाती है। चीता कुत्ते की भांति बैठ जाता है। जब हिरन दिखाई पड़ जाते है, तब गाड़ी रोक कर चीता उतारा जाता है और आंखों से पट्टी उतार कर हिरनों की तरफ कर दिया जाता है। बस, चीता या तो आड़ लेता हुआ जाता है या एकदम सीधे हिरन पर आक्रमण कर देता है और उसे तब तक दबाए रहता है, जब तक उसका मालिक आकर फिर उसकी आंखों पर पट्टी नहीं बांध देता।

पर चीता अनुमानतः अब भारत से खत्म ही होने वाला है।

स्याहगोश

'स्याह' का अर्थ है काला और 'गोश' का अर्थ है कान। इसलिए स्याहगोश का अर्थ हुआ काले कान वाला जानवर। स्याहगोश के अनेक भेद हैं। उनमें प्रमुख यूरोपीय है। हमारे देश में यह पंजाब, मध्य प्रदेश के जंगलों और मलाबार तक को छोड़ कर दक्षिण के सभी जंगलों में पाया जाता है। तिब्बती स्याहगोश लद्दाख और हिमाचल प्रदेश, टिहरी-गढ़वाल और कुमाऊं के उत्तरी भाग में पाया जाता है। सन् 1923 में लेखक ने एक स्याहगोश टिहरी-गढ़वाल की भैरों घाटी और तिब्बत की सीमा के बीच मारा था।

स्याहगोश की लम्बाई ढाई फुट और ऊंचाई डेढ़ फुट होती है। छोटी-सी पूंछ की लम्बाई एक फुट से कम होती है, जिसका सिरा काला तथा चमड़ा बढ़िया होता है। स्याहगोश का रंग हल्का भूरा या बादामी होता है। उसके पेट का रंग पिलछौंह होता है तथा उस पर हल्की चित्तियां पड़ी होती हैं। उसके कान बाहर भूरे होते हैं और उन पर काला हाशिया बना होता है तथा नोक पर बाल होते हैं। गले पर बड़े-बड़े बाल-से होते हैं, जिनसे उसका सौन्दर्य और बढ़ जाता है।

स्याहगोश, मोर, खरगोश तथा अन्य छोटे जानवर पकड़ता है। चिड़ियां पकड़ने में तो वह बड़ा दक्ष होता है। कभी-कभी लोग उसे लोमड़ी, खरगोश, तीतर, मोर और कबूतर के शिकार के लिए पालते हैं।

बिल्लियां

हमारे देश में कई प्रकार की बिल्लियां होती हैं, पर यहां हम जंगलों में रहने वाली केवल प्रमुख तीन का ही वर्णन करेंगे।

मछुआ बिल्ली

मछुआ बिल्ली को बंगाल में 'माछ-विड़ाल' और अंग्रेजी में 'फिशिंग कैट' कहते हैं। इसकी लम्बाई पूंछ को छोड़ कर ढाई फुट होती है। पूंछ 10-11 इंच लम्बी होती है। मछुआ बिल्ली की ऊंचाई सवा फुट होती है। इसके बदन का रंग सलेटी होता है और गालों का रंग सफेद, जिस पर काली धारियां होती हैं। इसके शरीर पर गहरे रंग के चकत्ते होते हैं। पूंछ का सिरा काला होता है।

यह बिल्ली दलदल, झील और नदियों के किनारे रहना पसन्द करती है और घोंघे, कछुए, मछली, आदि का शिकार करती है।

यह कुत्ता, भेड़ और आदमी के गोद के बच्चों को कभी-कभी उठा ले जाती है।

मछुआ बिल्ली हिमालय की तराई में बहुत बड़ी संख्या में पाई जाती है। दक्षिण में यह मलाबार तट में पाई जाती है।

बाघ बिल्ली

बाघ बिल्ली प्रायः घने जंगलों और पहाड़ी इलाकों में पाई जाती है। हमारे देश में यह हिमालय में शिमला तक और हिमालय के दक्षिण भाग में, पश्चिमी घाट, केरल और असम में होती है।

इसके बदन का रंग भूरा होता है, जिस पर काली गाढ़ी, आड़ी लम्बापन लिए चित्तियां होती हैं। इसकी गरदन पर काली धारियां तथा पूछ और पैरों पर काली चित्तियां होती हैं। इसकी लम्बाई 24 से 26 इंच तक होती है तथा पूछ 11-12 इंच लम्बी होती है।
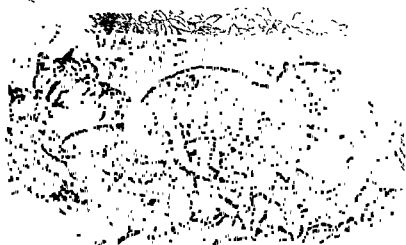
यह अपनी गुज़र चूहों, जंगली चिड़ियों और मुर्गियों से करती है। गुस्सावर भी यह कम नहीं होती। जून सन् 1923 में टिहरी-गढ़वाल के प्रताप नगर नामक स्थान से डेढ़ मील की दूरी से खबर आई कि एक गुफा में बाघिन के बच्चे हैं। लेखक ने जाकर गुफा के मुंह पर आग जलवाई, धुआं किया, पर बच्चे नहीं निकले। सायंकाल बाघिन तो नहीं आई, पर बाघ बिल्ली वहां आई। आग और धुआं खत्म हो चुका था। गुफा के पास उसने 'म्याऊं-म्याऊं' शब्द किया, तो गुफा से दो मोटे बच्चे निकले। लेखक ने आड़ से निकल कर पत्थर मार बाघ बिल्ली को भगाने की चेष्टा की। पर भगाने की बजाय वह गुर्रा कर इतनी तेजी से झपटी कि अगर बंदूक उसके पेट में न अड़ जाती और फौरन फायर न हो जाता, तो वह लेखक की गरदन से चिपट जाती। बच्चों को लेखक उठा लाया। वे कई दिन जिन्दा रहे।

वन बिल्ली

वन बिल्ली या वन बिलार घर की बिल्ली से कुछ बड़ी, भारी तथा खूंखार होती है। रंग इसका सुर्खी मिला हुआ मटमैला होता है। चूहे, चिड़ियां, खरगोश, आदि इसकी खास खुराक हैं। कभी-कभी यह भेड़-बकरी के बच्चों और आदमी के दुधमुंहे बच्चों को भी उठा ले जाती है।
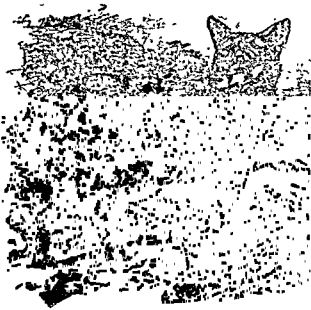
भेड़िया

भेड़िये की खूंखारी और भूख प्रसिद्ध है। दुनिया का कोई भी देश ऐसा नही है, जहा भेड़िये न हों। ध्रुव प्रदेशों में भी यह पाया जाता है और अमेरिका में भी। तिव्वत जैसे ठंडे और बर्फीले प्रदेश में भी भेड़िया होता है और यूरोप में भी। हमारे देश में हिमालय की तलहटी से लगा कर दक्षिण तक और पूर्व से पश्चिम तक भेड़िये फैले हुए हैं। रूस में तो वहां की महाक्रांति तक भेड़ियों की दो-दो, तीन-तीन सौ की टोलियां घूमती थीं और जिस गांव पर वे आक्रमण करती थी, उस गांव में बंदूकें आदि काम मे लाने पर भी

समूचे गांव को नष्ट कर देती थीं। भेड़िये की एक विचित्र बात यह है कि वह भेड़िये तक को खा जाता है। इसी से सिद्ध होता है कि वह कितना खूंखार जानवर है। सोवियत रूस ने हवाई जहाज़ों से भेड़ियों को मार कर उन्हें अब बहुत कम कर दिया है और वैसा कोई खतरा अब वहां नहीं है।

बर्फ और ठंडी जगहों का भेड़िया काफी बड़ा होता है। अल्सेशियन कुत्तों की नस्ल भेड़िये की नस्ल से ही निकाली गई है। हमारे देश में भी भेड़ियों की संख्या अब बहुत कम हो गई है, फिर भी कभी-कभी वे सात-सात और नौ-नौ की टोली में देखे गए हैं। वैसे नर-मादा प्रायः साथ रहते हैं और तीन-चार भेड़िये भी कभी-कभी साथ रहते हैं। स्वभाव से भेड़िया टोली में रहने वाला और मिल कर शिकार खेलने वाला जानवर है।

भेड़ियों की सच्ची कहानियां हमारे देश में प्रसिद्ध हैं और वे लिपिबद्ध भी हैं। एक बार शिवाजी के एक जनरल अपने तीन-चार आदमियों के साथ युद्ध-क्षेत्र से लौट रहे थे। रात पड़ने पर एक नाले के किनारे वे लोग सो गए। थोड़ी ही देर बाद दस-बारह भेड़ियों का बोल कुछ दूर पर सुनाई पड़ा। लकड़ियां तो बटोर के रखी ही थीं, उन्होंने फौरन आग जला दी। तभी भेड़ियों ने आ घेरा। आदमियों ने जलती लकड़ियों का एक वृत्त बनाया और आग के बाहर भेड़िये गुर्राने और भर्राने लगे। लकड़ियां तो घण्टे-दो घण्टे ही जल सकती थीं। सौ गज की दूरी पर आम के पेड़ थे। जलती लकड़ियों के घेरे को पेड़ की ओर आदमी बढ़ाते गए और भेड़िये गुर्राते हुए घूम-घूम कर दांव लगाते रहे। इतने भेड़ियों से

भुगतना आसान काम न था। बड़े परिश्रम से जलते हुए वृत्त को पेड के पास तक बढ़ाया गया और लोग बड़ी चालाकी तथा कठिनाई से उस रात के समय में पेड़ पर चढ़ गए। भेड़िये भी नीचे धरना देकर बैठ गए। दिन निकल आया, पर भेड़िये घात लगाए रहे। तब जनरल ने अपने साफे का फंदा बनाया और जमीन से आठ-दस फुट ऊंची शाख पर उतर कर फंदा नीचे लटकाया। भूखे क्रोधित भेड़िये ने ज्यों ही मुंह मारने की चेष्टा की कि गले में फंदा डाल कर जनरल ने भेड़िये को शाख से लटका कर फांसी दे दी। जब भेड़िया मर गया, तब उसे ऊपर खींच कर शाखा पर रख लिया। इसी प्रकार फंदों में फंसा-फंसा कर और शाखा पर लटका-लटका कर जनरल ने बड़ी चतुराई और शक्ति से कई भेड़िये मार कर इकट्ठे कर लिए और तब उन सबको एकदम नीचे गिरा दिया। भूखे भेड़िये उन मरे भेड़ियों को खाने में जुट गए, तब जनरल और उनके साथी पेड की दूसरी ओर से आंख बचा कर उतरे और भाग गए।

यह बात बिल्कुल ठीक है कि भेड़िया कभी-कभी आदमियो के बच्चों को उठा कर ले जाता है और अपने बच्चों के साथ पालता है। पर ऐसे पाले हुए बच्चे पकडे जाने पर जानवरों जैसा ही बर्ताव करते हैं और बहुत दिनों बाद ही कपड़ा पहनना सीखते हैं। उनका मानसिक विकास तो होता ही नहीं।

भेड़िया जितना चालाक और धूर्त होता है, उतना ही डरपोक भी होता है। रात में वह आदमी पर भी आक्रमण कर देता है, पर वैसे उसकी खुराक में भेड़, बकरी, चूहे, बिल्ली, खरगोश और गाय के बच्चे शामिल हैं। भेड़िये हिरन का शिकार अजीब ढंग

से खेलते हैं। मादा गड्ढा-सा खोद कर छिप कर बैठ जाती है। अपने मटमैले रंग के कारण वह मिट्टी में दिखाई नहीं देती। नर हिरनों को खदेड़ते हैं और उधर होकर निकलने पर मादा किसी-न-किसी हिरन को पकड़ लेती है। इनके इस प्रकार के शिकार को हमने स्वयं देखा है। दो-एक भेड़िये से तो आदमी झांसा देकर बच भी जाता है——जैसे रस्सी को ज़मीन पर खींच कर चलने से। भेड़िया संदेह में पड़ा रह जाता है और खिचती रस्सी पर बिना समझे-बूझे देख कर भी हमला नहीं करता।

भेड़िया थकना नहीं जानता। भूख भी उसकी कभी नहीं मिटती। पर भूखी हालत में भी वह बीस-बीस मील चला जाता है। भेड़ पकड़ने में तो वह बड़ा ही दक्ष होता है। बकरी को जब वह पकड़ता है, तब बकरी की सिट्टी गुम हो जाती है और वह बोल भी नहीं पाती। भेड़ और बकरियों में गड़रिये इसीलिए एक गाय रखते हैं, ताकि जब भेड़िया आक्रमण करे, तो गाय रक्षा कर सके। फर्रुखाबाद जिले में एक ढाक के जंगल के किनारे लेखक हिरन के शिकार के लिए बैठा था। दो सौ गज़ पर एक गड़रिये की बकरियां, एक भैंस और एक गाय चर रही थीं। जंगल से निकल एक भेड़िये ने लपक कर भैंस के करीब वाली एक बकरी की गरदन को पकड़ लिया। भैंस ने सिर उठाया, देखा और कुछ नहीं कहा। पर जैसे ही गाय की नज़र भेड़िये पर पड़ी, उसने पूंछ उठा कर भेड़िये पर हमला किया और सींगों से उठा कर भेड़िये को दूर फेंक दिया। भेड़िया कंपकंपाया और भाग खड़ा हुआ।

गांव के कुत्तों से भेड़िया ज़रा भी नहीं डरता——उनको

झांसा देकर वह बकरियों और भेड़ों की चोरी करता रहता है। हमने बीसियों भेड़ियों को मार कर, पेट चिरवा कर देखा है, पर हमेशा उनका पेट खाली ही मिला। भेड़िये की भूख कभी नहीं मिटती। दिल और हड्डियों की बनावट से उसकी सहन-शक्ति और दौड़ने की ताकत का पता चलता है।

भेड़िया तीन फुट लम्बा और ढाई फुट ऊंचा होता है। उसकी पूंछ डेढ़ फुट लम्बी कुत्ते जैसी होती है, सियार जैसी नहीं। उसकी पीठ का रंग कालापन लिए भूरा, पूंछ भूरी और पेट मटमैला सफेद होता है। बच्चे कलछौंह भूरे होते हैं, जिनकी छाती पर सफेद दाग होता है। अगर बच्चे बहुत छोटे पकड़ लिए जाएं, तो वे पाले जा सकते हैं।

भेड़िया भौंकता नहीं है। कई भेड़िये मिल कर रात में ऊहू-ऊहू की पतली आवाज निकालते हैं, जो सियार की आवाज से बिल्कुल भिन्न होती है।
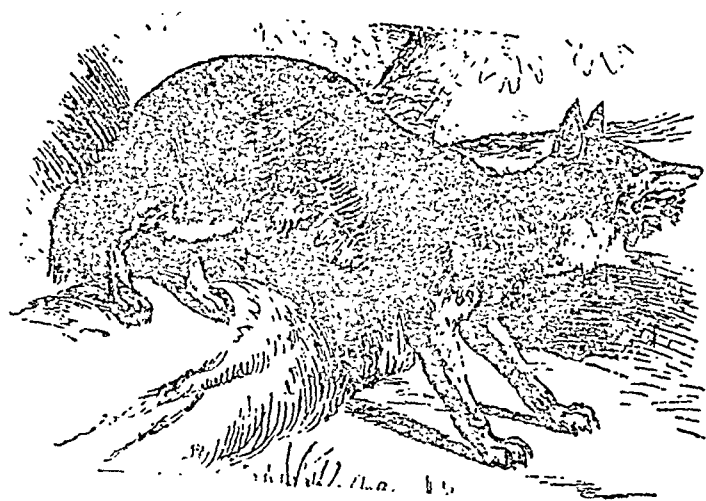
जंगली कुत्ता

जंगली कुत्ता साधारणतया दिखाई नहीं देता, पर चिड़ियाघर में उसे सब देख सकते हैं। चिड़ियाघर में उसे देख कर उसकी चालाकी, मक्कारी और शिकार करने के ढंग का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। वहां तो वह एक मामूली-सा प्राणी लगता है—गीदड़ से छोटा और लोमड़ी से कुछ बड़ा। पर इतना-सा प्राणी जंगली जानवरों के लिए पूरा शैतान है। शैतान से भी एक बार हिरन, चीतल और सांभर भले बच जाएं, पर जंगली कुत्तों के समूह से वे नहीं बच सकते। और-तो-और, जंगली कुत्तों से शेर और बाघ तक डरते हैं, तथा जिस जंगल में ये कुत्ते पहुंच जाते हैं, वहां से वे कूच कर जाते हैं।

जंगली कुत्ते को गढ़वाल में 'च्यूं' और अन्य जगहों में 'सोनहा' या 'सोन कुत्ता' और कहीं-कहीं 'ढोल' कहते हैं। इसकी लम्बाई

तीन फुट से कुछ अधिक होती है, जिसमें से एक फुट झबरी पूछ की लम्बाई है। जंगली कुत्ते के शरीर का ऊपरी भाग लाल मिला हुआ बादामी होता है, जिसमें सलेटी रंग भी मिला होता है। पूछ का सिरा काले रंग का होता है।

जंगली कुत्ते टोली में रहते हैं। इनकी बडी भारी शक्ति गिरोहबंदी की है। दस-दस, बारह-बारह, पन्द्रह-बीस तक की इनकी टोली होती है। यह जिस जानवर के पीछे पड़ जाती है, उसे बिना मारे नही छोड़ती। ये कुत्ते आगे-पीछे से घेर कर जानवर को भगाना शुरू कर देते है। थक कर जानवर पानी पीने भागता है और जैसे ही पानी पीना शुरू करता है, ये चिपट पड़ते है। न उस जानवर को खाने देते है, न आराम करने देते है, थका-थका कर उसे बेदम कर देते हैं। नील गाय और सांभर कभी-कभी अपने बचाव के लिए पानी में घुस जाते हैं, पर इस शैतान-समूह से वहा भी उनका बचाव नहीं होता। लात या सीगों से अगर दो-चार कुत्ते मर भी जाएं, तो इसकी उनको चिन्ता नही होती।

शेर एक तो स्वयं ही इनसे बचता है, दूसरे जगली कुत्ते भी शेर को तरह देते हैं, पर अगर कभी शेर के मारे शिकार पर ये कुत्ते पहुंच गए और शेर ने झपट्टा मार कर दो-एक कुत्ते मार दिए, तब शेर की मौत का वारंट ही कट जाता है। ये शेर को घेर लेते हैं और उसे सोने और खाने तक नहीं देते। जंगली कुत्ते जानते हैं कि शेर की एक थाप से एक कुत्ते का कचूमर निकल सकता है, अतः ये उस पर एकदम हमला नहीं करते। बस, घेरे रहते हैं और जब शेर खाने लगता है, तब पीछे से मुंह मारते हैं। जो-कुछ भी हो, ये शेर

ग्रेलते हैं, उसकी आंखों पर पेशाब कर देते हैं। यह बात बिल्कुल
। इसी तरह की हरकत अमेरिका का एक जानवर स्कंक अपने
ही खातिर करता है, यानी वह एक तरल बदबूदार पदार्थ
। अफ्रीका का थूकने वाला काला सांप (रिंगल) या स्पिटिंग
भी ऐसा ही करता है और आदमी या जानवर की आंखों
निशाने से जहर थूकता है, जिसके पड़ते ही आदमी या
बेचैन हो जाता है और उसे दिखाई पड़ना बन्द हो जाता
र तत्काल समुचित उपचार मिले, तो काफी दिनों में दृष्टि
है। पर जंगली कुत्तों का समूह होता है और वे बार-बार
ा कर झाड़ियों पर पेशाब करते हैं। संभवतः इनसे बचने
ानवर झाड़ी से टकराता है, तब पेशाब की बूंदें उसकी आंखों
जाती हैं।

ंगली कुत्ता मारने के लिए सरकार की ओर से काफी इनाम
ली जानवरों के दुश्मन नम्बर एक इस जंगली कुत्ते के मिट
लाभ ही है, हानि नहीं।

D/63

को खाना नहीं खाने देते। क्रोधित शेर चल पड़ता है, पर कुत्ते उसका पीछा नहीं छोड़ते—आगे-पीछे, अलग-बगल चलते हैं। शेर चिढ़ कर भागता है, तो ये भी अपनी चाल बढ़ा देते हैं। शेर जब पानी में घुसने लगता है, तब ये पीछे से पूंछ और बगल में मुंह मारते हैं। क्रोधित शेर गुर्रा कर पीछे को लपकता है, तो ये उसकी मार से दूर भाग खड़े होते हैं। फिर शेर जब पानी में मुंह लगाता है, तब ये पीछे से मुंह मारते हैं। घबरा कर शेर दुलकी चाल से जाकर साया में बैठना चाहता है, तब भी कुत्ते चैन नहीं लेने देते। शेर को ज़रा झपकी लगी नहीं कि कुत्तों ने फौरन मुंह पर झपटना शुरू कर दिया। बिल्ली की जाति वालों का सबसे बड़ा अपमान है उनकी पूंछ खींचना, ये कुत्ते मिल कर शेर का अपमान करते हैं। मज़ा यह है कि खुद तो कुत्ते बारी-बारी से पानी पी आते हैं, आराम कर लेते है, खा-पी लेते हैं, पर शेर पर धरना जारी रखते हैं। शेर घबराया हुआ भाग खड़ा होता है और भागते-भागते उसके पैरों की चर्बी पिघल जाती है। तब वह बेचैन होकर बैठ जाता है, पर यमदूत अब भी उसका पीछा नहीं छोड़ते। इस तरह शेर पागल-सा हो जाता है। बस, जब शेर भूख, प्यास और थकावट से अधमरा हो जाता है, तब कुत्ते चिपट पड़ते हैं। कोई पेट फाड़ता है, कोई कहीं काटता है, कोई कहीं। दो-एक कुत्ते मारे भी जाते हैं, पर इसकी चिन्ता किए बिना ये शेर को तो मार ही लेते हैं। नील गाय, सांभर और चीतल की क्या बिसात जो इन जंगली कुत्तों के शैतान-समूह से बच सके। जिन जंगल में ये घुस जाते हैं, वह अन्य जानवरों से सुनसान-सा हो जाता है।

जंगली कुत्तों के बारे में एक भ्रम यह है कि ये जिस जानवर का

सियार

सियार या गीदड़ हमारे देश में हर जगह पाया जाता है । कहने को तो सियार को कायर वता देते हैं, पर वास्तव में वह बड़ा सयाना है । वह लड़ाई से तो वचता है, पर चालाकी और अपने शिकार की प्राप्ति के ढंग में वह बड़ा ही चतुर है । गांव के आसपास जंगलों और पठारों में सियार जोड़े में प्राय: देखे जाते हैं । रात में वे छोटी टोली में भी हो जाते हैं, पर दिन में वे घास या झाड़ियों में छिपे रहना पसन्द करते हैं । भोजन की तलाश वे रात में ही करते हैं । सियार सर्वभक्षी है । मुर्दार और सड़ी-गली चीज़ें तो खाता ही है, वह चूहे, चिड़ियां, वत्तखें, गोह और धामिन सांप तक नहीं छोड़ता । इसके अतिरिक्त किसानों के लिए भी सियार ववालेजान है । मक्का,

खरबूजा, ग्राम और पके कटहल भी वह नहीं छोड़ता। ईख भी वह बड़े स्वाद से खाता है। कभी-कभी कड़े गन्ने को पकड़ने में जीभ फंस जाती है, तो वह भूखों भी मर जाता है। जो कुछ भी हो, फसल का नुक्सान करने में वह कभी नहीं चूकता। जंगली बेरों पर वह जान देता है, इसलिए सियार के लिए कभी दुर्भिक्ष नहीं पड़ता।

सियार की घ्राण-शक्ति इतनी तेज होती है कि मुर्दार की गंध वह बड़ी दूर से ले लेता है। नदी-किनारे वह मछलियां भी पकड़ता है और अपना शिकार पकड़ने में बड़े दुस्साहस और चालाकी से काम लेता है। वह घायल हिरन को गिरा लेता है—कमजोर जानवर को भी अकेले में गिरा लेता है, पर इस काम में दो-तीन सियार मिले रहते हैं। हमारे द्वारा घायल की गई एक नील गाय को चार सियारों ने पन्द्रह मिनट में चारों ओर से घेर कर मुंह मार-मार कर गिरा लिया। कभी-कभी जब आठ-दस सियार मक्का के खेत में आ जाते हैं और आदमी उनकी रखवाली के लिए टांड़ से नीचे उतरता है, तब वे उस पर आक्रमण कर देते हैं। इक्के-दुक्के सियार पर जब कोई शिकारी कुत्ता हमला कर देता है, तो उसकी आवाज सुन कर सहायता के लिए और सियार भी आ जाते हैं।

भेड़िये से सियार बहुत डरता है, क्योंकि भेड़िया उसे मार कर खा जाता है। जंगल में सियार शेर और बाघ से दूर, पीछे-पीछे चलते हैं और जब शेर किसी बड़े पशु को मार कर खाता है, तो ये दूर बैठ कर बड़ी शांति से प्रतीक्षा करते हैं और शेर के चले जाने पर उसकी जूठन पर दावत उड़ाते हैं। सियार गांव के आसपास आकर मुर्दार और सड़ी-गली चीजें खा जाते हैं—मुर्गी आदि भी

चुरा ले जाते हैं। नदी-किनारे सियार केंकड़ा पकड़ता है। यदि झ
में शहद की मक्खियों का छत्ता हो, तो सियार उसे भी नहीं छोड़त

भारत के किसी भी भाग में गीदड़ को देखा जाए, उस
आकार में किसी तरह का अन्तर नहीं होता। सियार ढाई फुट
अधिक लम्बा होता है और उसकी झबरी पूंछ अलग एक फुट व
होती है। सियार का रंग लाल, भूरा और कत्थई मिला होता है
जिसमें से पीठ पर कुछ कालापन होता है और नीचे का हिस्सा हल्क
सफेदी मिला होता है। पूंछ के बाल काले होते हैं। सियार के बोलने
का खास समय होता है। सायंकाल एक गीदड़ आसमान की ओर
मुंह करके 'हुइए-हुइए' करता है, तो अन्य सियार भी उसकी आवाज़
सुन कर 'हुइए-हुइए' करने लगते हैं। ज़मीन पर रखे चिड़ियों के
अंडे भी वह नहीं छोड़ता। नदियों के किनारे बालू पर वह कछुए और
मगर के अंडों को खाता है।

सियार जब पागल हो जाता है, तब एक बड़े भारी खतरे
की बात होती है। एक रात में एक ही पागल सियार बीसों आदमियों
को काट लेता है और टीके न लगवाए जाएं, तो काटे व्यक्ति की मौत
ही हो जाती है। सियार पागल न हो, तब भी उसके काट लेने से
मनुष्य के पागल होने का डर रहता है, क्योंकि उसकी लार में पागल
करने के कीटाणु बहुत अधिक मात्रा में होते हैं।

चरख या लकड़बग्घा

चरख या लकड़बग्घा या हड़हा हमारे देश का एक विचित्र जानवर है। अंग्रेजी में इसे 'हाइना' कहते हैं। यह तीन प्रकार का होता है :

1—चित्तेदार या हंसोड़ चरख

2—भूरा चरख

3—धारीदार चरख

हमारे देश में केवल धारीदार चरख होते हैं। चित्तेदार चरख और भूरे चरख अफ्रीका में होते हैं। इन तीनों में सबसे बड़ा तथा खतरनाक चित्तेदार चरख होता है। प्रकृति की म्युनिसिपैलिटी में जो स्थान पक्षियों में गीध को प्राप्त है, लगभग वही स्थान मुर्दार और गंदगी खाने वाले जानवरों में चरख का है।

देखने में चरख बड़ा ही बदसूरत और घिनौना लगता है।

साधारण चाल में यह ऐसा प्रतीत होता है, मानो लंगड़ा हो और शरीर को घसीट कर ले जा रहा हो। इसका कारण यह है कि इसका अगला भाग भारी होता है---अगली टांगें भी बड़ी होती हैं, जिनसे वह भिटे खोदने का काम लेता है। पिछली टांगें छोटी होती हैं, पिछला भाग भी हल्का होता है और इसलिए चलने में चरख पिछला भाग घसीट कर ले जाता हुआ लंगड़ा-सा प्रतीत होता है।

चरख का मुंह काला, कान खड़े, जबड़े बहुत मज़बूत, गरदन मोटी और बहुत मज़बूत होती है। रीढ़ की हड्डी, जो सिर और कंधों को जोड़ती है, बहुत मज़बूत होती है; इसलिए वह जुड़ी-सी दिखाई देती है। चरख का जबड़ा इतना मज़बूत होता है कि सूखी हड्डियों को भी वह आसानी से चबा लेता है। एक प्रकृति-प्रेमी ने तो चरख के लिए लिखा है कि उसका जबड़ा शेर जैसा होता है और दिल चूहे का-सा अर्थात् चरख स्वभावतः कायर होता है, पर उसके जबड़े की पकड़ बड़ी कारगर और खतरनाक होती है। कायरों का एक स्वभाव होता है कि वे अपने से कमज़ोर या दबने वाले पर भयंकर आक्रमण करते हैं। चरख के जबड़े की ताकत का अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि यदि वह बड़ी-से-बड़ी भैंस की टांग पकड़ ले, तो फौरन ही उसे तोड़ डाले। बैल की रान पर उसके जबड़े का पूरा प्रहार हो जाए, तो उसे तत्काल उखाड़ दे।

नाक से पूंछ के सिरे तक चरख की लम्बाई साढ़े चार फुट होती है, जिसमें से अकेली पूंछ डेढ़ फुट लम्बी होती है। चरख का रंग पिलछौंह सलेटी होता है, जिस पर खड़ी और आड़ी कालापन लिए धारियां होती हैं। यह बेडौल और बदसूरत मुर्दाखोर जानवर

जंगलों, नालों, नदी के किनारे के भिटों और छोटी चट्टानों की गुफाओं में रहता है। अफ्रीका में तो यह टोली बाध कर भी शिकार खेलता है, पर हमारे देश में चरख इक्के-दुक्के ही दिखाई पड़ते हैं। दिन भर चरख किसी मांद या झाड़ी में पड़ा सोता रहता है और सायं-काल निकलता है। कुत्ता खाने का चरख बड़ा शौकीन होता है। रात में इसे कुत्ता बड़ी आसानी से मिल भी जाता है। मादा कभी-कभी झाड़ी की आड में बैठ जाती है और नर गांव की ओर जाकर कुत्तों को देख कर दिखावटी डर से भागता है। कुत्ते उसका पीछा करते हैं और जैसे ही नर चरख झाड़ी के सामने होकर कुत्तों को अपने पीछे भगाता आता है, मादा चरख किसी-न-किसी कुत्ते को गपक लेती है। यदि एक बार चरख के दांत कुत्ते पर जम गए, तो फिर वह बच नहीं सकता। यह जहां से भी पकड़ता है, उसे तोड़ देता है। चरख की कायरता और धूर्तता का एक ढंग यह है कि वह चुपचाप किसी बछड़े-बछिया या गधे के पास आ जाता है—विशेषकर बिना बंधे हुए खुले बैठे जानवर के पास। जैसे ही जानवर डर कर भागता है, चरख की बन आती है। इसका अगर कोई मुकाबला कर बैठे, तब फिर यह आक्रमण नहीं करता। इसलिए तन्दुरुस्त जानवर के बिदकने पर चरख आक्रमण करता है।

चरख की मादा एक बार में चार से पांच तक बच्चे देती है। छोटे बच्चों पर धारियां बड़ी स्पष्ट और चौड़ी होती हैं, जो बड़ी आयु में पतली हो जाती हैं। रात में मोटर के यात्रियों को कभी-कभी चरख सड़क पार करते हुए दिखाई दे जाता है और मुंह में गाय या भैंस की पूरी-की-पूरी टांग लगी रहती है।

वैसे तो चरख मुर्दार और गंदगी खाने वाला जानवर है और प्रकृति की चुंगी का एक बड़ा सदस्य है, पर जंगलों के कम होने से इसकी खुराक कम हो गई है। यह दौड़ तो तेज़ सकता नहीं, अतः अपनी भूख मिटाने को गांवों से कुत्ते, मुर्गी, बत्तख और भेड़-बकरी ही नहीं, वरन् आदमी के बच्चों तक को उठा ले जाता है। आदमियों के छोटे बच्चों को—मां के पास सोए बच्चों तक को—यह इस चालाकी से उठा ले जाता है कि माता भी नहीं जान पाती कि उसका बच्चा उठा लिया गया। अपने शैतानी जबड़े यह बच्चे की गरदन पर ऐसे जकड़ देता है कि तीन-चार वर्ष तक के बच्चों को ही नहीं, वरन् बारह-तेरह वर्ष के बच्चों तक को उठा ले जाता है। चरख का जबड़ा इतना मज़बूत होता है कि इतने बड़े बच्चे को गरदन से पकड़ कर घसीटता ले जाता है। कभी-कभी लोग ले जाते हुए बच्चे को देख कर चरख का पीछा करते हैं और लाठियों से घेर-घार कर मार भी लेते हैं, पर चरख के चंगुल में एक बार आ गया लड़का कभी नहीं बचता।

जंगल में चरख की खुराक इसलिए कम हो गई है कि एक तो जंगल ही काट डाले गए हैं और दूसरे आदमियों ने हिरन, खरगोश, आदि मार कर खा लिए हैं। अतः चरख को अपनी भूख मिटाने के लिए सबसे आसान खुराक—आदमी का बच्चा—पकड़नी पड़ती है। कभी-कभी, विशेषकर गरमियों में, गांवों में चरख का आतंक इतना फैल जाता है कि लोगों को बच्चों की रक्षा के लिए विशेष प्रबन्ध करना पड़ता है। पर चरख छोटी दीवारों को आसानी से पार कर, छोटे बच्चों को मुंह में दबा कर, दीवार फांद कर चला जाता है।

वैसे तो चरख मुर्दार और गंदगी खाने वाला जानवर है और प्रकृति की चुंगी का एक बड़ा सदस्य है, पर जंगलों के कम होने से इसकी खुराक कम हो गई है। वह दौड़ तो तेज सकता नहीं, अतः अपनी भूख मिटाने को गांवों से कुत्ते, मुर्गी, बत्तख और भेड़-बकरी ही नहीं, वरन् आदमी के बच्चों तक को उठा ले जाता है। आदमियों के छोटे बच्चों को—मां के पास सोए बच्चों तक को—यह इस चालाकी से उठा ले जाता है कि माता भी नहीं जान पाती कि उसका बच्चा उठा लिया गया। अपने शैतानी जबड़े यह बच्चे की गरदन पर ऐसे जकड़ देता है कि तीन-चार वर्ष तक के बच्चों को ही नहीं, वरन् बारह-तेरह वर्ष के बच्चों तक को उठा ले जाता है। चरख का जबड़ा इतना मज़बूत होता है कि इतने बड़े बच्चे को गरदन से पकड़ कर घसीटता ले जाता है। कभी-कभी लोग ले जाते हुए बच्चे को देख कर चरख का पीछा करते हैं और लाठियों से घेर-घार कर मार भी लेते हैं, पर चरख के चंगुल में एक बार आ गया लड़का कभी नहीं बचता।

जंगल में चरख की खुराक इसलिए कम हो गई है कि एक तो जंगल ही काट डाले गए हैं और दूसरे आदमियों ने हिरन, खरगोश, आदि मार कर खा लिए हैं। अतः चरख को अपनी भूख मिटाने के लिए सबसे आसान खुराक—आदमी का बच्चा—पकड़नी पड़ती है। कभी-कभी, विशेषकर गरमियों में, गांवों में चरख का आतंक इतना फैल जाता है कि लोगों को बच्चों की रक्षा के लिए विशेष प्रबन्ध करना पड़ता है। पर चरख छोटी दीवारों को आसानी से पार कर, छोटे बच्चों को मुंह में दबा कर, दीवार फांद कर चला जाता है।

चरख की प्रकृति के मेहतर या मुर्दाखोर की हमारे देश में अब आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इस काम के लिए सियार मौजूद है। चरख की खुराक हिरन, खरगोश आदि अब बहुत कम हो गए हैं। चरख कभी-कभी कुत्ते और गीदड़ की तरह पागल भी हो जाता है और उन्हीं की तरह काटने भी लगता है। पागल चरख के काटे का इलाज भी वही होता है, जो पागल गीदड़ या कुत्ते के काटे का होता है।*

---

*लेखक ने हरदोई जिले में एक ऐसा चरख आसानी से मारा था, जिसने आसपास के चालीस बच्चे खा लिए थे। गांव से दो मील दूर एक छोटे जंगल के किनारे वह एक अंधे कुएं की बगल में भिटा बना कर रहता था।

लोमड़ी

हमारे देश में लोमड़ी घने जंगलों को छोड़ प्रायः प्रत्येक क्षेत्र में पाई जाती है। वैसे दुनिया में अनेक प्रकार की लोमड़ियां हैं, पर ध्रुव प्रदेशों की लोमड़ी की खाल अपने समूर के कारण बड़ी महंगी बिकती है। लोमड़ी अपनी चालाकी के लिए प्रसिद्ध है और गांव वाले इसकी चालाकी के लिए 'लुखरपेच' शब्द का प्रयोग करते हैं, अर्थात् लोमड़ी द्वारा इस्तेमाल की गई चाल। मक्कारी की साक्षात् मूर्ति लोमड़ी यदि इतनी चालाक न हो, तो वह कुत्तों, गीदड़ों और भेड़ियों से बच न सके।

भारत की लोमड़ी एक छोटा जानवर है, जिसकी लम्बाई नाक से पूंछ की जड़ तक बीस इंच होती है। पूंछ की लम्बाई 13-14 इंच होती है। पूंछ झबरी फूली-सी होती है जिसका अंतिम सिरा काला होता है। कान भूरे और शरीर का रंग लालपन लिए भूरा होता है।

जब खुशी से लोमड़ी चलती है, तब पूंछ जमीन से छूती रहती है; पर जब भागती है, तब पूंछ ऊपर उठ जाती है। बचाव के समय जब वह दिशा बदलती है, तब उसकी पूंछ ऊपर सतर खड़ी हो जाती है।

कुत्तों को चकमा देने और उनको उल्लू बनाने में लोमड़ी बड़ी सिद्धहस्त होती है। चकमा दे-देकर वह कुत्तों को थका देती है और वे उसे छोड़ कर भाग जाते हैं। कुत्तों से पीछा किए जाने पर अगर लोमड़ी को टीला मिल जाता है, तो वह टीले का चक्कर काटती है और तेजी से ऊपर चढ़ जाती है। कुत्ते बेचारे चक्कर काटते और इधर-उधर देखते रह जाते हैं। यदि ऊपर टीले पर कुत्ते इसे देख लें, तो फिर वह आगे चल कर 'बिलुकइयां' काटती है। हमने कई बार देखा है कि कुत्ते से पीछा किए जाने पर वह एक बड़े आक के पेड के पास खड़ी हो जाती है और कुत्ता दूसरी ओर से आक्रमण के लिए खडा हो जाता है। लोमड़ी इधर-उधर हिलती है, कुत्ता झपट्टा मारता है और लोमड़ी आक के ऊपर से छलांग मार कर तेजी से भागी चली जाती है। जैसे ही कुत्ता पास आता है, लोमड़ी एकदम समकोण बना कर दाएं-बाएं हो जाती है। कुत्ता दौड़ की तेजी में पांच-छः गज आगे चला जाता है और लोमड़ी खड़ी होकर ऐसे देखती है, मानो कुत्ते पर हंस रही हो। आखिर कुत्ता झख मार कर चला जाता है। कभी-कभी तो इस प्रकार चक्कर काटने में जैसे ही लोमड़ी की पूंछ ऊपर उठती है, कुत्ते का मुंह लोमड़ी की पूंछ में लगता है और पूंछ के बाल उसके मुंह में भर जाते हैं। कुत्ता बाल थूकता रह जाता है और लोमड़ी बच जाती है।

हाथी

चरख की प्रकृति के मेहतर या मुर्दाखोर की हमारे देश में अब आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उस काम के लिए सियार मौजूद हैं। चरख की खुराक हिरन, खरगोश आदि अब बहुत कम हो गए हैं। चरख कभी-कभी कुत्ते और गीदड़ की तरह पागल भी हो जाता है और उन्हीं की तरह काटने भी लगता है। पागल चरख के काटे का इलाज भी वही होता है, जो पागल गीदड़ या कुत्ते के काटे का होता है।*

*लेखक ने हरदोई ज़िले में एक ऐसा चरख आसानी से मारा था, जिसने आसपास के चालीस बच्चे खा लिए थे। गांव से दो मील दूर एक छोटे जंगल के किनारे वह एक अंधे कुएं की बगल में भिटा बना कर रहता था।

लोमड़ी

हमारे देश में लोमड़ी घने जंगलों को छोड़ प्रायः प्रत्येक क्षेत्र में पाई जाती है। वैसे दुनिया में अनेक प्रकार की लोमड़ियां हैं, पर ध्रुव प्रदेशों की लोमड़ी की खाल अपने समूर के कारण बड़ी महंगी बिकती है। लोमड़ी अपनी चालाकी के लिए प्रसिद्ध है और गांव वाले इसकी चालाकी के लिए 'लुखरपेच' शब्द का प्रयोग करते हैं, अर्थात् लोमड़ी द्वारा इस्तेमाल की गई चाल। मक्कारी की साक्षात् मूर्ति लोमड़ी यदि इतनी चालाक न हो, तो वह कुत्तों, गीदड़ों और भेड़ियों से बच न सके।

भारत की लोमड़ी एक छोटा जानवर है, जिसकी लम्बाई नाक से पूंछ की जड़ तक बीस इंच होती है। पूंछ की लम्बाई 13-14 इंच होती है। पूंछ झबरी फूली-सी होती है जिसका अंतिम सिरा काला होता है। कान भूरे और शरीर का रंग लालपन लिए भूरा होता है।

जब खुशी से लोमड़ी चलती है, तब पूंछ जमीन से छूती रहती है; पर जब भागती है, तब पूंछ ऊपर उठ जाती है। बचाव के समय जब वह दिशा बदलती है, तब उसकी पूंछ ऊपर सतर खड़ी हो जाती है।

कुत्तों को चकमा देने और उनको उल्लू बनाने में लोमड़ी बड़ी सिद्धहस्त होती है। चकमा दे-देकर वह कुत्तों को थका देती है और वे उसे छोड़ कर भाग जाते हैं। कुत्तों से पीछा किए जाने पर अगर लोमड़ी को टीला मिल जाता है, तो वह टीले का चक्कर काटती है और तेजी से ऊपर चढ़ जाती है। कुत्ते बेचारे चक्कर काटते और इधर-उधर देखते रह जाते हैं। यदि ऊपर टीले पर कुत्ते इसे देख लें, तो फिर वह आगे चल कर 'विलुकइयां' काटती है। हमने कई बार देखा है कि कुत्ते से पीछा किए जाने पर वह एक बड़े आक के पेड़ के पास खड़ी हो जाती है और कुत्ता दूसरी ओर से आक्रमण के लिए खड़ा हो जाता है। लोमड़ी इधर-उधर हिलती है, कुत्ता झपट्टा मारता है और लोमड़ी आक के ऊपर से छलांग मार कर तेजी से भागी चली जाती है। जैसे ही कुत्ता पास आता है, लोमड़ी एकदम समकोण बना कर दाएं-बाएं हो जाती है। कुत्ता दौड़ की तेजी में पांच-छः गज आगे चला जाता है और लोमड़ी खड़ी होकर ऐसे देखती है, मानो कुत्ते पर हँस रही हो। आखिर कुत्ता झख मार कर चला जाता है। कभी-कभी तो इस प्रकार चक्कर काटने में जैसे ही लोमड़ी की पूंछ ऊपर उठती है, कुत्ते का मुंह लोमड़ी की पूंछ में लगता है और पूंछ के बाल उसके मुंह में भर जाते हैं। कुत्ता बाल थूकता रह जाता है और लोमड़ी बच जाती है।

लोमड़ी की खुराक चूहे, चिड़ियां, छिपकलियां, कीड़े, अंडे, फल इत्यादि हैं। खट्टे अंगूरों की कहानी तो सब जानते हैं। मुर्गी-पालकों के लिए लोमड़ी मुर्गी-चोर होने के नाते बड़ी कष्टदायक है।

जाड़ों में लोमड़ी का नर सुबह, शाम और रात को 'खो-खो-खो' करता सुना जाता है। गांव वालों का भ्रम है कि वह जाड़े के कारण चिल्लाता है। पर वह नर इस प्रकार मादा को बुलाता है। मादा फरवरी, मार्च और अप्रैल में चार तक बच्चे देती है। खुले मैदान में या किसी झाड़ी या मेंड के निकट वह मांद-सी बनाती है, जिसमें कई मुंह होते हैं। एक-दो मुंह तो अंधे ही होते हैं। प्रातःकाल इसके बच्चे बिलों के पास निकल कर खूब खेलते हैं। छोटी उमर के बच्चे अगर पकड़ लिए जाएं, तो पल जाते हैं।
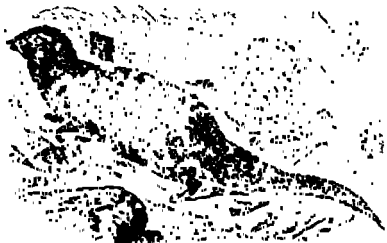
नेवला

नेवला हमारे देश में सर्वत्र पाया जाता है । हमारे यहां इसके चार प्रकार हैं : एक, सुनहरा नेवला, जो कश्मीर, हिमालय प्रदेश आदि स्थानों में होता है; दूसरा, साधारण नेवला, जो दक्षिण को छोड़ कर सारे देश में पाया जाता है, तीसरा, मद्रास का नेवला, जिसका रंग पीलापन तथा बादामी लिए होता है, चौथे प्रकार का नेवला इन नेवलों से बहुत बड़ा होता है, उसे उत्तर प्रदेश में 'ग्रौर' कहते हैं और वह प्रायः सायंकाल से लेकर प्रात:काल तक ही शिकार खेलता है । स्वभाव में सब नेवले एक-से ही होते हैं । नेवला आसपास की भौगोलिक स्थिति की जानकारी के विषय में बड़ा उत्सुक रहता है । यदि वह किसी मकान में आ जाता है, तो पहले हर कोने और कमरे की जानकारी प्राप्त

करता है। यही हाल उसका जंगल में है। तेजी और उत्सुकता उसका स्वभाव है। वह एक छोटा जानवर है, क्योंकि मामूली नेवले की लम्बाई पूंछ को छोड़ कर सवा फुट तक होती है। इतनी ही लम्बी उसकी पूंछ होती है। नेवले के शरीर का रंग भूरा होता है, जिसमें पीले और काले रंग की झलक होती है। नेवले के शरीर पर छोटे-छोटे खुरखुरे बाल होते हैं, जिन्हें वह हमला करते समय खड़े कर लेता है। तब वह दूना बड़ा मालूम पड़ता है।

शरीर के अनुपात से नेवला बड़ा ही बहादुर जानवर है—वह अपने से चौगुने जानवर से भिड़ जाता है। गलती से यदि बिल्ली नेवले पर आक्रमण कर दे, तो यह पूंछ और शरीर के बाल फुला कर, शरीर को ऊंचा करके, पास आते ही 'खिर्र-खिर्र' की आवाज़ से बिल्ली को धमका देता है और बिल्ली डर जाती है। कुत्ता जैसे ही नेवले पर आक्रमण करता है, वैसे ही नेवला कूद कर कुत्ते की नाक में दांत गड़ा देता है और कुत्ता 'कांय-कांय' करके भाग जाता है। यदि नेवले का आकार बड़े कुत्ते के बराबर होता और उसका वज़न डेढ़ मन के करीब होता, तो वह शेर को भी कुछ नहीं समझता और शायद गाय-बैल को आसानी-से मार लेता। वैसे प्राकृतिक जीवन में सन्तुलन रखने के लिए नेवला बड़ा उपयोगी है। यह सांप, चूहे, खेती के अन्य हानिकारक जन्तुओं को खाने का बड़ा शौकीन है। लोगों का एक बड़ा भ्रम है कि सांप के काटे जाने पर नेवला एक ज़हर निरोधक बूटी खा लेता है। असल बात यह है कि सांप को काटने का वह मौका नहीं देता। इन पंक्तियों के लेखक ने कई बार सांप और नेवले की लड़ाई देखी है। बाल फुला कर वह

काले सांप का मुकाबला करता है और सांप जैसे ही आक्रमण करता है, वैसे ही नेवला साप का फन मुंह में पकड़ कर चबा देता है। सांप के मुंह पर ही वह वार करता है। उसे मार कर एकान्त और अंधेरी-सी जगह में ले जाकर वह शान से खाता है। धामिन सांप में जहर नहीं होता और वह मौका पाकर कभी-कभी अपनी गुंजलक में दबा कर नेवले को मार देता है। एक बार एक बड़े धामिन सांप पर नेवले ने आक्रमण किया। दो ज्वार के पेड़ों पर धामिन सांप चढ़ने लगा, पर नेवले ने पीछे से दौड़ कर उसकी पीठ पर चढ़ कर फन पर कचकचा कर दांत मारे। सांप गिर गया, पर दोबारा आक्रमण होने पर धामिन ने नेवले को गुंजलकों में पकड़ लिया और मार दिया। पर बहुत कम मौकों पर नेवले को ऐसी हार खानी पड़ती है।

मकानों में से नेवला रोटी, घी तथा अन्य खाद्य पदार्थ भी ले जाता है। अंडों, मुर्गियों का भी वह बड़ा शौकीन होता है और कभी-कभी तो सिर्फ अपने शिकार का भेजा ही खाता है।

नेवला बड़ी आसानी से पाला जा सकता है। दूध पिला कर छोटा बच्चा पाला जाए, तो थोड़े दिनों में ही झींगुर आदि खाकर गुजर करने लगता है। [illegible]
घर में चूहे तो वह [illegible]

हाथी

स्वाभाविक ज्ञान, समझदारी, स्मरण-शक्ति और स्वामिभक्ति का दीर्घकाय बलवान प्रतीक हाथी है। वह खुश्की के जानवरों में सबसे बड़ा और सबसे समझदार है। हमारे देश का हाथी अफ्रीकी हाथी से कुछ छोटा होता है—सिर और दांतों की बनावट में भी वह भिन्न होता है। भारत में हाथी उत्तर प्रदेश के देहरादून ज़िले से तराई के किनारे-किनारे गढ़वाल, कुमाऊं और असम के जंगलों तथा दक्षिण में विशेषकर मैसूर में पाया जाता है।

हाथी के बारे में कहावत है कि उसके दांत खाने के और, तथा

दिखाने के और होते हैं। उस कहावत बनाने वाले को हाथी के इन दिखाने वाले दांतों की जानकारी कम होगी, क्योंकि नर हाथी के बाहर निकले बड़े दांत, जो सात फुट तक लम्बे होते हैं, केवल दिखाने के ही नहीं होते। अगर नर हाथी के ये बाहरी दांत न हों, तो उसकी ताकत आधी रह जाए। नर हाथी को लड़ना पड़ता है और इन दांतों को वह शत्रु के शरीर में घुसा देता है। बोझा ढोने का काम आ पड़ने पर वह इन्हीं दांतों पर शहतीर रख लेता है। हथिनियों में ये बाहरी दांत बहुत छोटे होते हैं। हाथी के खाने के दांत भीतर होते हैं।

इस विशालकाय जानवर की लम्बाई उसकी ऊंचाई से तिगुनी होती है और ऊंचाई साधारणतया 8-10 फुट होती है। लम्बाई का नाप सूंड के सिरे से पूंछ के सिरे तक होता है। पूछ के सिरे पर काले मोटे बाल होते हैं। भारतीय हाथी का रंग कालिमा लिए हुए सलेटी-सा होता है और वजन 80 मन के लगभग होता है। अफ्रीकी हाथी का वजन इससे कहीं अधिक होता है। हिलाने में भी यदि पूछ किसी के लग जाए, तो प्रतीत होगा कि लट्ठ पड़ गया।

हाथी की सूंड़ उसके शरीर का एक विचित्र तथा आवश्यक अंग है। उससे वह बड़े-से-बड़ा, छोटे-से-छोटा तथा कठिन-से-कठिन काम कर लेता है। सूंड़ की नोक पर एक अंगुली-सी होती है, जिससे वह ज़मीन से सुई तक उठा लेता है। सूंड़ में पानी भर कर वह मुंह में उंडेल कर पानी पीता है। सूड़ में ही पानी भर कर वह अपने शरीर पर छिड़कता है। गरमियों में बहुत गरमी लगने और पानी न

मिलने पर सूंड़ मुंह में डाल कर, भीतर से पानी मिला थूक निकाल कर वह पीठ पर छिड़क लेता है। अगर खड़ा हो और मक्खियां काटती हों, तो वह पेड़ पर से शाखा तोड़ कर सूंड़ में पकड़ कर आदमी की तरह अपने शरीर पर शाखा का पंखा झलता है।

इस भीमकाय मोटी खाल वाले जानवर के शरीर पर वाल नहीं होते। फिर भी अपनी चर्वी और खाल के कारण इसे वहुत गरमी लगती है। पानी में तैरना, लोटना, खेलना, स्नान करना और कीचड़ में सना रहना इसे पसन्द है।

हाथी झुंड में रहने वाला जानवर है और जव हाथियों का झुंड चलता है, तव एक के पीछे एक पंक्ति वांध कर चलता है। झुंड का नेतृत्व कोई हथिनी करती है, पर जव शेर का खतरा होता है, तब बच्चे बटोर कर एक जगह पीछे कर दिए जाते हैं और दंतैल नर सामने आ जाते हैं। हाथी की सूंघने की शक्ति वड़ी तीव्र होती है। उसकी ओर बहने वाली वायु में एक मील दूर तक वह आदमी की गंध पा जाता है। खुशी में या खेल में वे 'घुर-घुर' की आवाज़ बच्चों के साथ करते हैं, जिसे आपस में वे खूब समझते हैं।

जंगली हालत में हाथी कई-कई मास तक बैठता नहीं है, क्योंकि शेर या किसी अन्य खतरे के आने पर फिर वह अपने भारी शरीर को शीघ्रता से उठा नहीं सकता। किसी बड़े पेड़ के सहारे टिक कर वह खड़े-खड़े ही सो लेता है। घने सायेदार जंगल हाथी को वहुत पसन्द हैं। धान और ईख भी उसे वेहद पसन्द हैं। उन्हें खाने वह रात में गांवों की तरफ आता है तथा ठंडक में चर कर दोपहर का समय बांसों के झुरमुटों में घने साये में बिताता है। खुश्की के दिनों में

जब पानी का अभाव हो जाता है, तब उनका बड़ा झुंड कई छोटे झुंडों में विभाजित हो जाता है और गरमियों के बाद वर्षा आने पर फिर पहले की तरह मिल जाता है।

स्वभाव से हाथी आदमी और शेर, इन दो की गंध से ही डरता है। चालीस वर्ष में वह पूरा जवान होता है और उसकी कुल आयु 150 वर्ष तक कूती गई है। हाथी के कानों से उसकी आयु का पता चल जाता है। कानों की कोरें जितनी भीतर को सिकुड़ी होंगी, उतनी ही अधिक हाथी की उमर होगी। हथिनियां पालतू हालत में बहुत ही कम बच्चा देती हैं। जब कभी दे भी, तो भारतीय इसे बड़ा अपशकुन मानते हैं।

जितने भी हाथी पालतू किए जाते हैं और काम में लाए जाते हैं, वे सब जंगल से पकड़ कर लाए जाते हैं। उनको पकड़ कर लाने और पालतू बनाने का तरीका बड़ा ही रोचक है। एक बहुत बड़ा मजबूत लट्ठों का बाड़ा बनाया जाता है, जो जंगल में स्वाभाविक सा ही प्रतीत होता है। एक बहुत बड़ा दरवाजा खुला छोड़ दिया जाता है और बाहर से भीतर हरा चारा, गन्ने इत्यादि रख, दिए जाते हैं। स्वभावतः ही स्वादिष्ट वस्तुओं के चटोरे हाथियों का झुंड जब जंगल में दिखाई पड़ता है, तब उस बाड़े की ओर आने की उसे प्रेरणा दी जाती है। झुंड-का-झुंड इस प्रकार बाड़े में घुस आता है और तब पीछे से दरवाजा बन्द कर दिया जाता है। फिर-जिन हाथियों को पकड़ना होता है, उनके पैरों में पालतू हाथियों पर बैठ कर फंदा फेंका जाता है। फंदा पड़ जाने पर बाड़ा खोल दिया जाता है। झुंड भाग जाता है और कैद किए गए हाथी

एक-एक, दो-दो पालतू हाथियों के बीच फंसा कर ले जाए जाते हैं और उन्हीं पालतू हाथियों के बीच बांधे जाते हैं। फिर धीरे-धीरे स्नेह से उन्हें पालतू बना लिया जाता है।

हाथी की समझदारी पर अगर लिखा जाए, तो न जाने कितने ग्रन्थ तैयार हो जाएं। जब वह जान जाएगा कि किसी काम के करने से लाभ होगा, तो उसे स्वतः ही करने लगेगा। एक बार एक हाथी की आंखें खराब हो गईं और दिखाई पड़ना बन्द हो गया। दुखी महावत ने उसे बड़ी कठिनाई से लिटा कर डाक्टर से दवा डलवाई हाथी दर्द से चिल्लाया और उठ गया, पर जब अगले दिन उसने अनुभव किया कि उस आंख से उसे दिखाई पड़ने लगा है, तब डाक्टर को देख कर वह खुद ही लेट गया और दूसरी आंख डाक्टर के सामने कर दी। उसने दवा डलवाई और बड़े स्नेह तथा कृतज्ञता से डाक्टर के साथ व्यवहार किया। ऊंट की तरह वह कीनेबाज़ नहीं होता।

हाथी को अपने दांतों से कई मन हरी शाखों और बांसों का प्रति दिन रस अपनी खुराक के लिए निकालना पड़ता है, इसलिए प्रकृति उसके जीवन में कम-से-कम चार बार दांत बदलती है।

बिहार के हरिहर (सोनपुर) क्षेत्र में हाथियों का बड़ा मेला लगता है, जहां से देश भर के लोग हाथी खरीदते हैं।

दलदल से हाथी बहुत घबराता है और पुलों को पार करने में बड़ी समझदारी से काम लेता है। पुल ज़रा भी कमज़ोर हो, तो वह आगे नहीं बढ़ेगा। दलदल में फंस जाने पर हाथी मर ही जाते हैं। पहाड़ी से उतरते समय वह घुटनों के बल खिसकता है, पर अपना सन्तुलन नहीं खोता

पहले हाथी लड़ाई के काम में बहुत आता था, पर भड़क जाने पर वह अपने ही आदमियों को रौंद कर मार दिया करता था। अब तो हाथी केवल विवाह-शादी, मेला, दशहरा और मनोरंजन की चीज है। जहां पानी और चारा काफी है और यातायात के साधन नहीं हैं, वहां यह बहुत उपयोगी होता है। लकड़ी ढोने और सवारी, दोनों के काम यह आता है।

हाथी को शिकार के लिए जब सिखाते हैं, तब पहले मरे शेर की गंध इसे बसाई जाती है, फिर नकली शेर से भिड़ाया जाता है। काफी सिखाए जाने पर भी शिकार में नर की अपेक्षा मादा अधिक उपयुक्त होती है। नर में कभी-कभी मद आ जाता है और ऐसा मस्त हाथी बिना छेड़े ही समय पाकर ठीक हो जाता है, पर अगर जबरदस्ती या नाराजगी से उसे वश में किया गया, तो वह भयंकर मार-पीट और दुर्घटना करता है।

जंगल में कभी-कभी दंतैल और बड़ी उमर के हाथी को झुंड से निकाल दिया जाता है। हथिनियों के रनिवास पर अन्य जवान हाथी अधिकार करना चाहते हैं, तो उन्हें लड़ाई लड़नी पड़ती है और हार जाने पर भागना पड़ता है। इक्कड़ होकर ऐसा जंगली हाथी खतरनाक हो जाता है और क्रोध तथा बदले की भावना में बड़ा भयंकर संहार करता है। वह आदमियों और मकानों को भी नष्ट कर देता है।

हथिनी 21-22 मास में बच्चा देती है और अन्य पशुओं से भिन्न हथिनी में एक बात यह होती है कि उसके थन अगली टांगों के बीच में होते हैं।
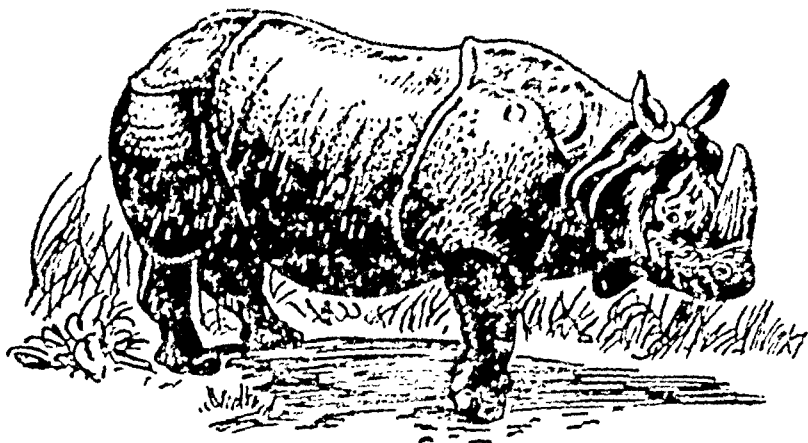
गैंडा

गैंडा भारत का एक प्रसिद्ध जानवर है, जो अब केवल असम के एक क्षेत्र में पाया जाता है और उसकी संख्या भी सीमित है। भारत सरकार से वह सुरक्षित है, क्योंकि बिना सावधानी के उसके लुप्त हो जाने का खतरा है। पद्रहवीं शताब्दी में तो गैंडा पेशावर तक पाया जाता था और बाबर ने एक गैंडा सिन्धु नदी के किनारे मारा था। दक्षिण-भारत में भी गैंडा पाया जाता था। असल में गैंडा घास चरने वाला, जड़ें और बेलें खाने वाला पशु है और 19वीं शताब्दी के अर्धभाग तक वह उत्तर प्रदेश के तराई क्षेत्र और रुहेलखण्ड में पाया जाता था। बंगाल में गंगा की घाटी में भी गैंडा पाया जाता था, क्योंकि इसके लिए दलदल, घास, घने जंगल और पत्तियां चाहिए।

गैंडे के शरीर पर बाल नहीं होते—बस, कान और पूंछ पर ही बाल होते हैं उसके नाखून हाथी-जैसे होते हैं। उसका रंग कलछौंह

सलेटी होता है और शरीर पर खाल ढालों की तरह की तरह मढ़ी होती है। सबसे विचित्र बात यह है कि गैंडे के थूथने के ऊपर एक या डेढ़ फुट ऊंचा सींग-सा होता है, पर असल में वह सींग नहीं है। हजारों ही मोटे और मजबूत बाल इकट्ठे होकर ऊपर उठे होते हैं और गैंडे के लिए वह सींग बड़ा उपयोगी होता है। एक बार टूट जाने पर वह सींग फिर बढ़ जाता है। गैंडे का ऊपर का होंट बड़ा मजबूत होता है, जिससे वह अपना चारा खाता है। इस पशु की ऊंचाई 5-6 फुट होती है और लम्बाई थूथन के सिरे तक आठ दस फुट होती है। पैर छोटे और गठीले, सिर बड़ा और आंखें छोटी होती हैं।

गैंडे के बारे में साधारण लोगों का यह भ्रम है कि उस पर गोली असर नहीं करती। डंसों से बचने के लिए वह अपने शरीर पर कीचड़ लपेटे रहता है, अतः खाल ऐसी प्रतीत होती है कि गोली नहीं लगेगी। पर गोली तो क्या, गैंडे के शरीर में चाकू भी एकदम घुसा चला जाता है। अफ्रीका और सुमात्रा में भी गैंडे होते हैं, पर भारतीय गैंडा सबसे शानदार होता है। भारत में गैंडे के सींग के प्यालों का बड़ा महत्व है और आम खयाल है कि उन प्यालों से जहर की पहचान होती है। सींग बहुत कीमती होता है।

गैंडे को आदमी की गंध पसन्द नहीं है, पर घायल और क्रोधित होने पर वह बड़ा भयंकर आक्रमण करता है। वह काफी तेज दौड़ भी सकता है और सूअर की भांति गुरगुराहट करता है। इसकी मादा एक समय में एक बच्चा देती है।

जंगली सूअर

हमारे देश में जहां जंगल, झाड़ी, नाले और उनके साथ पानी है, वहां जंगली सूअर मिलेगा। देशी पालतू सूअर और जंगली सूअर में कोई भेद नहीं है। हां, रंग और फुर्ती में भेद अवश्य है। जंगली सूअर का रंग देशी सूअरों की भांति ही कलछौंह, पर तनिक सफेदी लिए हुए कत्थई होता है। यों तो सूअर के पूरे शरीर पर बिखरे कड़े बाल होते हैं, पर गरदन से पीठ तक कड़े बालों की एक पंक्ति होती है, जिन्हें वह क्रोध में खड़ा कर लेता है। इन्हीं बालों के ब्रुश बनते हैं। सूअर के बच्चे भूरे रंग के होते हैं, जिन पर खड़ी धारियां होती हैं। ये धारियां बड़े होने पर विलीन हो जाती हैं। पट्ठे सूअर का भी रंग भूरा होता है, जो बड़ी उमर में सलेटी हो जाता है।

जंगली सूअर पांच फुट लम्बे और ढाई-तीन फुट ऊंचे होते हैं। फिर भी, उनका वजन तीन-चार मन होता है। मुंह लम्बा, थूथन चपटा और नर के थूथन के अंत में नचीली गोलाकार होंठनुमा खाल होती है। इसी से वह ट्रैक्टर के डिस्क फाले की भांति सूखी ज़मीन को भी फाड़ देता है। पूरी उमर वाले सूअर की कांपें दोनों ओर निकली होती हैं, जिन्हें देख कर डर लगता है और ऐसा मालूम होता है, मानो सूअर अपने इस भयंकर हथियार का पूरा गुमान रखता है।

थोड़ी दूर तक तो सूअर बहुत तेज़ दौड़ सकता है, पर अधिक दूर नहीं। साधारणतया जंगली सूअर हमला नहीं करता और आदमी की आहट पाकर भाग जाता है, पर घायल होने पर वह साक्षात् यमदूत हो जाता है और उसके हमले को रोकना आसान काम नहीं होता। बस, यह समझना चाहिए कि तेज भागते हुए लगभग तीन-चार मन वजन में दो बहुत तेज छुरे लगे हों और वह वजन 'हौड' करके अपने शत्रु में बड़े ज़ोर की टक्कर दे। यह टक्कर अगर किसी जानवर—शेर तक—के लग गई, तो पेट फट कर सूअर का शत्रु मर ही जाता है। घायल सूअर को इतना क्रोध आता है कि वह आदमी या कुत्ते को पकड़ कर कभी-कभी एक तरफ से चबाना शुरू कर देता है, पेट फाड़ता है और मार कर छोड़ता है। सूअर के शिकार में बड़े कीमती घोड़ों को सूअर की एक टक्कर से ही बेकार होते और उसका पेट फटते भी देखा गया है। बड़ी-से-बड़ी भैंस की टांग सूअर एक टक्कर में तोड़ देता है। घायल सूअर जब पूछ ऊपर को उठा 'घुरर' और 'हौड' करके दौड़ पड़ता है, तब शिकारी को परमात्मा ही बचा सकता

है । आक्रमण करने में जंगली सूअर इतना निडर होता है कि जब वह आक्रमण कर बैठता है, तब आदमी तो क्या, हाथी को भी नहीं छोड़ता । उसकी गरदन इतनी मोटी और मज़बूत होती है कि मुड़ती नहीं । अतः टक्कर बड़ी भयंकर होती है ।

एक बार लेखक ने शेर के शिकार के लिए सधी हथिनी पर बैठे हुए ढाई सौ गज़ की दूरी से भागते हुए एक जंगली सूअर पर निशाना लिया । गोली ओछी पड़ी और सूअर ने कुछ बैठा-सा होकर फिर एकदम एक्सप्रेस ट्रेन की गति से हथिनी की अगली टांग में टक्कर दी । दूसरी टांग से हथिनी ने उसे 5-6 गज़ दूर फेंक दिया और सूअर की हड्डी-पसली का भुरता बन गया । पर उस दिन से हथिनी सूअर के शिकार के योग्य न रही । सूअर देख कर वह कांपने लगती और भाग खड़ी होती । चार-पांच इंच मोटाई के पेड़ को सूअर एक टक्कर से गिरा देता है ।

जंगली सूअर टोली में रहता है और 15-15, 20-20 की टोली में देखा जाता है । रात को जिस खेत में वे पिल पड़ते हैं, उसका नाश ही हो जाता है । ऊबड़-खाबड़ नालों से मिली झाड़ियों और घास में सूअर आबादी से दूर रहता है और जहां आदमी का खटका न हो, वहां दिन में भी चुगता है । पर कभी-कभी शकरकंद के खेत में से तो वह आदमी के भगाने पर भी नहीं भागता । कीचड़ और पानी में लोटने का वह बड़ा शौकीन है, इसलिए जहां आसपास पानी नहीं होगा, वहां सूअर नहीं मिलेगा ।

अंग्रेजों के समय में सूअर का शिकार घोड़ों और बल्लमों से किया जाता था, जिसे 'पिग स्टिकिंग' कहते थे । घोड़ों से सूअर का

पीछा करके उसे भाले से मारा जाता था। बहुत-से स्थान इस काम के लिए सुरक्षित थे। पंजाब, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और दक्षिण के इलाकों में ऐसे स्थान सुरक्षित थे, जहां 'पिग स्टिकिंग' होता था। यह बड़ा ही साहसपूर्ण और उत्तेजक शिकार होता है। कभी-कभी सूअर मुड़ कर आक्रमण कर घोड़े को बेकार कर देता है। पहाड़ों पर 8-9 हज़ार फुट की ऊंचाई तक सूअर मिलता है, पर वहां उसके रहने का ढंग विचित्र होता है। झाड़ियां काट कर वह अपने छिपने का स्थान बनाता है और जमीन खोद कर भीतर रहता है। एक बार हिमालय में आठ हजार फुट की ऊंचाई पर लेखक एक स्थान को लकड़ियों का ढेर समझ कर उस पर खड़ा हो गया। थोड़ी ही देर बाद नीचे भूचाल-सा आया प्रतीत हुआ, लकड़ियां हिलीं और सूअर 'हौंड' करके निकल भागा।

मांस खाने वाले लोग इसके मांस को बहुत पसन्द करते हैं। इसमें बेहद चर्बी होती है। जंगली सूअर के मांस का अचार भी डाला जाता है। इसकी खाल भी बड़ी कीमती होती है, परन्तु खाल निकालने में बड़ी सावधानी बरतनी पड़ती है।

झुंड से मार-पीट कर जिस सूअर को निकाल दिया जाता है, वह इक्कड़ हो जाता है।

भालू

दुनिया के भालू परिवार में तो कई प्रकार के भालू होते हैं, पर हमार देश में केवल तीन प्रकार के भालू होते हैं–(1) भूरा भालू, (2) हिमालय का काला भालू, (3) रुक्ष भालू। अंग्रेज़ी में क्रमशः तीनों के नाम हैं–'ब्राउन बेयर' 'हिमालयन ब्लैक बेयर' और 'स्लोथ बेयर'। दुनिया के सब से खतरनाक भालू होते हैं, उत्तरी ध्रुव के सफेद भालू (पोलर बेयर), जिन्हें 'उत्तर का शेर' भी कहते हैं। दूसरे प्रकार का खतरनाक भालू है 'ग्रिजली भालू', जो उत्तरी अमेरिका में पाया जाता है और बहुत ही खूंखार होता है। किसानों की गायों

तथा घोड़ों को वह बात-की-बात में खा जाता है, पर हमारे यहां इतने खतरनाक भालू नहीं होते ।

हमारे देश में भालुओं के विषय में बड़ा भ्रम है । पहला तो यह कि भालू पेड़ पर उल्टा चढ़ता है और उतरता भी वैसे ही है । यह बात बिल्कुल गलत है । भालू सीधा ऊपर को मुंह किए ही पेड़ पर चढ़ता है और उतरता भी वैसे ही है, पर तने पर आकर सरक पड़ता है । दूसरा भ्रम यह है कि ये शाकाहारी होते हैं और मांस नहीं खाते, पर बात ऐसी नहीं है । यह ठीक है कि हिमालय का काला भालू और रुक्ष भालू मांस खाने की खातिर पशु नहीं मारते, पर यदि उन्हें किसी पशु का शव पड़ा मिल जाए, तो वे उसे बड़े चाव से खाते हैं । एक-दो बार इस पुस्तक के लेखक को ऐसा अवसर देखने को मिला । गाय की लाश पर बाघ की प्रतीक्षा करते समय उसने भालू को लाश पर आते देखा । भालू आकर बुरी तरह गाय को खाने भिड़ पड़ा । एक दूसरी बार जब भालू बाघ की मारी गाय खा रहा था, तो बाघ आ गया और दोनों में खूब लड़ाई हुई । अन्त में, दोनों ही मारे गए । प्रसिद्ध शिकारी जिम कार्बेट ने लिखा है कि एक बार जब वह एक भैंसे की लाश पर शेर के लिए बैठे थे, तब शेर के आने के बाद एक विशालकाय हिमालयन काला भालू आया और ऊपर से ही शेर को देख कर खड्ड में कूद कर उसने शेर को भगा दिया । इतना ही नहीं, वरन् वह शेर के भागने पर उसके पीछे भी भागा ।

भूरा भालू

भूरा भालू भारत के हिमवर्ती क्षेत्रों में पाया जाता है । कश्मीर से लगा कर हिमाचल प्रदेश, गढ़वाल और कुमाऊं के क्षेत्र

इसके निवास-स्थान हैं । कभी-कभी मदारियों के पास भी यह देखा जाता है । कभी-कभी इसका रंग कत्थई भी होता है, इसलिए इसे 'लाल भालू' भी कह देते हैं । भूरे भालू के रंग में पीलेपन की भी झलक होती है, पर यह रंग मौसम के अनुसार बदला करता है । अन्य भालुओं की भांति ही भूरे भालू की छाती पर अंग्रेज़ी के 'वी' (V) अक्षर का-सा चिन्ह होता है और अगर खड़े भालू पर निशाना लेने का मौका हो, तो शिकारी इसी पर निशाना लेते हैं । भूरे भालू के बाल मोटे और मुलायम होते हैं तथा गरमियों में छोटे हो जाते हैं ।

साधारणतया भूरे भालू की लम्बाई नाक से पूंछ के सिरे तक साढ़े-पांच फुट होती है । कभी-कभी साढ़े सात फुट तक लम्बे भालू पाए गए हैं । बड़े भालू की ऊंचाई सवा तीन फुट होती है ।

भूरे भालू की खुराक घास, जड़ें, जंगली फल, सेब, खुमानी, आदि हैं । पहाड़ी बाग-बगीचों को वह बहुत नुक्सान पहुंचाता है और कभी-कभी भेड़-बकरी भी खा जाता है । जाड़ा अधिक पड़ने पर वह शीतनिद्रा में रहता है । किसी गुफा में जाकर वह छिप जाता है और वसन्त के आगमन पर जब गुफा के द्वार की बरफ पिघलती है, तब भूखा-प्यासा बाहर निकलता है । जाड़े के दिनों में वह हिमालय पर कुछ नीचे उतर आता है और गरमी आते ही फिर ऊंचे स्थानों पर चला जाता है ।

हिमालय का काला भालू

हिमालय के काले भालू का रंग बिल्कुल काला होता है । इसके बाल चिकने-से दिखाई पड़ते हैं । इसके नाखून रुक्ष भालू की अपेक्षा

छोटे होते हैं। हिमालय के जंगलों में यह नीचे के भाग में पाया जाता है। शीतकाल आने पर यह घाटियों की ओर चला जाता है। और या तो पेड़ों पर अपने लिए झोंपड़ी-सी बना लेता है, या चट्टानों की गुफाओं में रहता है। प्रातःकाल धूप लेने को यह अपनी बनी जगह के बाहर दिखाई देता है और कभी-कभी आदमी से भी इसका मुकाबला हो जाता है। एक बार गरमियों के प्रारम्भ में लेखक काफल फल खाने को पेड़ पर चढ़ा, तो ऊपर भालू भी फल खाता दिखाई पड़ा। खैर थी कि राइफल थी। 'भों-भों' करके उसने हमला किया, पर गोली उसके मुंह में पड़ी। कभी-कभी पेड़ों के खोखलों में अनायास ही काला भालू मिल जाता है। एक बार सात हजार फुट की ऊंचाई पर एक छोटी चट्टान पर बैठ कर, लेखक घुएड़ को देख रहा था, तो चट्टान के नीचे ज्वालामुखी-सा फूट पड़ा और भालू निकल आया।

काला भालू बड़ा लड़ाका होता है। वह क्रोधी और मूर्ख भी होता है। काले भालू की दृष्टि तेज नहीं होती। उसकी श्रवण-शक्ति भी कम

होती है, पर उसकी सूंघने की शक्ति बड़ी तीव्र होती है। वह अकारण ही आदमी पर हमला कर देता है। नीचे भागने में वह गुड़ी-मुड़ी होकर लुढ़क जाता है और गहरे खड्डों में गट्ठर-सा बना जा गिरता है।

कश्मीर, गढ़वाल और कुमाऊं के काले भालू की लम्बाई नाक से पूंछ तक साढ़े-पांच फुट से साढ़े-छः फुट तक होती है। उसके कान बड़े होते हैं और ऊपर अपेक्षाकृत बड़े बाल होते हैं। उसकी ठोड़ी सफेद, ऊपरी होंठ थोड़ा सफेद, नाक लालिमा लिए हुए भूरी और छाती पर सफेद चिन्ह होता है। काले भालू का वज़न 200 पौंड से 250 पौंड तक होता है। हिमालय में उसका पित्त निकाल कर उसमें तांबा डाल देते हैं। पहाड़ी लोग उसे निमोनिया की बड़ी अच्छी दवा बताते हैं।

किसानों को वह बहुत नुकसान पहुंचाता है। मक्का और खेतों को वह उजाड़ देता है। सेब और खुमानी के बागों का तो वह बड़ा दुश्मन है। उससे बड़ी रखवाली करनी पड़ती है। शहद के छत्ते तोड़ने में भी वह बड़ा प्रवीण होता है। वह शहद खाने का शौकीन होता है—एक हाथ से मक्खियां उड़ा कर छत्ते को तोड़ मुंह में रख लेता है। दिमौर को तोड़ कर उसमें अपना मुंह देकर, उल्टी सांस खींच कर वह दीमक को अपने मुंह में खींच कर खा जाता है। वह चींटी भी खूब खाता है। शिकारियों को कभी-कभी वह इस क्रिया में मग्न मिल जाता है। घायल होने पर वह बहुत शोर करता है। उसके बच्चे मां के साथ कई वर्षों तक रहते हैं और छोटी उमर में मां की पीठ पर लद कर चलते हैं।

रुक्ष भालू

मदारियों के पास प्रायः रुक्ष भालू ही देखे जाते हैं। उसका एक कारण यह है कि हिमालय क्षेत्र को छोड़ कर भारत के शेष

मराठ मा और बच्चा

जंगली सूअर के बच्चे

काला हिरन

नील गाय

नील गाय

नील गाय को 'रोझ' भी कहते हैं। यह गाय नहीं है, एक प्रकार का हिरन है और इसकी गणना वैज्ञानिक वर्गीकरण से 'ऐंटीलोप' में की जाती है। नील गाय शब्द में गाय लगा रहने के कारण कहीं-कहीं लोग इसे न मारते है, न मारने देते हैं। गाय शब्द लगा रहने से नील गाय, गाय की बोधक नहीं है। गोभी में गो शब्द भी गाय का द्योतक है, पर गोभी से थोड़े-से लोग भले आपत्ति करें, अन्यथा सब उसे बड़े स्वाद से खाते हैं। नील गायों में नर के सींग होते है, मादा के नहीं। ऊंट, बकरी और हिरन की तरह वे मेंगनी करती हैं। शरीर-

नील गाय

नील गाय को 'रोझ' भी कहते हैं। यह गाय नहीं है, एक प्रकार का हिरन है और इसकी गणना वैज्ञानिक वर्गीकरण से 'एंटीलोप' में की जाती है। नील गाय शब्द में गाय लगा रहने के कारण कहीं-कहीं लोग इसे न मारते हैं, न मारने देते हैं। गाय शब्द लगा रहने से नील गाय, गाय की बोधक नहीं है। गोभी में गो शब्द भी गाय का द्योतक है, पर गोभी से थोड़े-से लोग भले आपत्ति करें, अन्यथा सब उसे बड़े स्वाद से खाते हैं। नील गायों में नर के सींग होते हैं, मादा के नहीं। ऊंट, बकरी और हिरन की तरह वे मेंगनी करती हैं। शरीर-

विज्ञान का खयाल न भी करें, तो गाय की एक पहचान गलकम्बल है, जो गोवंश वालों के अतिरिक्त किसी के नहीं होता ।

नील गाय की ऊंचाई 5 फुट और लम्बाई 7 फुट तक होती है । वह बड़ा भारी-भरकम और दुमदार जानवर है । नर के 8-9 इंच के सींग होते हैं और युवावस्था में उसके गले पर बालों का एक गुच्छा-सा निकल आता है तथा रंग में काला और पीलापन आ जाता है । जन्म के समय नर और मादा के रंग में कोई भेद नहीं होता ।

जिन स्थानों से नील गाय को दिन में अधिक भगाया जाता है, वहां वह रात में भी चरने को आती है । दो से लगा कर 20-22 और कभी-कभी 50-50 तक की टोली भी खेतों में आ जाती है । जिस खेत में होकर दस-पांच नील गायें भाग कर निकल जाएं, उस खेत का झुरकुट उड़ जाता है । रात में नर खेतों में लड़ते हैं और फसल का एक पौधा भी नहीं रह पाता । कुछ खास फसलों के तो ये जानी दुश्मन हैं । नील गाय जहां आती हो, वहां कोई अरंडी की खेती नहीं कर सकता । कोई-न-कोई मौका पाकर वह अरंडी को खतम कर ही जाती है । पोस्त, ज्वार, बाजरा, मकई, मूंग, मसीना, जई, गेहूं, कुछ भी इससे नहीं बचता । खेती के लिए हानिकारक जानवरों में इसका नाम सर्वप्रथम है । एक नील गाय प्रतिदिन लगभग दस आदमी का खाना बिगाड़ती है । इसको मारने के लिए बड़ी बोर की राइफल ही ठीक होती है । यह इतनी दमदार होती है कि बड़ी राइफल की गोली ओछी पड़ जाने पर मीलों भाग कर चली जाती है ।

नील गाय की खाल से घोड़े की काठी बहुत अच्छी बनती है, सूटकेस और जूते भी बहुत बढ़िया बनते हैं । पीछा किए जाने पर

नील गाय धोखाधड़ी भी बहुत करती है—खेत में छिप कर लेट जाती है। अधिक घायल होने पर भी झाड़ी की ओट में ही छिपती है। काला हिरन और चिकारा मिट रहे हैं, पर दुख है कि खेती की शत्रु नम्बर एक नील गायें बढ़ रही हैं और लगातार बढ़ती जा रही हैं।

चीतल

चीतल हमारे देश का प्रसिद्ध तथा सुन्दर हिरन है। इसे स्वर्णमृग भी कहते हैं। सीताजी ने इसी को मारने के लिए श्री रामचन्द्रजी से आग्रह किया था। नर चीतल को 'झांक' कहते हैं। चीतल बारहसिंगा के वंश का है। हमारे देश में यह पंजाब और राजपूताना को छोड़ कर सब जंगलों में होता है।

पांच फुट लम्बा और तीन फुट ऊंचा चीतल बड़ा मनोहर

प्राणी है। नर के तीन फुट लम्बे तीन शाखों वाले सींग होते हैं, मादा के सींग नहीं होते। इसके शरीर का ऊपरी भाग बादामी होता है, जिस पर सफेद चित्तियां बड़ी ही मनमोहक होती हैं। चीतल के सिर पर चित्तियां नही होती। पेट और भीतरी भाग सफेद होता है।

चीतल स्वभाव से झुंड में रहने वाला हिरन है। इसकी बीस से लेकर सत्तर-अस्सी और सौ तक की टोली पाई जाती है। सुबह और शाम तराई में, जंगल से बाहर, घास के मैदान में जब ये चरते हैं, तो ऐसा प्रतीत होता है, मानो फर्लांगों लम्बी हरी कालीन हो, जिसकी झालर तराई के पेड़ हों और चीतल का झुंड उस पर अंकित किया गया सुन्दर चित्र हो। बड़े सींगों वाले झांक एक तरफ चरते हैं, तो छोटे बच्चे अठखेलियां करते हैं। शेर और बाघ इनके बाहुल्य से अपना भोजन ठाठ मे चलाते हैं और इनके चलते गांव वालों के पालतू पशुओं को मारने की उन्हे आवश्यकता नहीं पडती।

स्वभावत: चीतल धूप निकलने तक चरते है और प्रात काल उन्हे देखा जा सकता है। धूप होते ही वे जंगल में घुस जाते हैं। जंगल में वे दिन-भर विश्राम करते हैं और प्रहरी पहरा देते हैं। सायंकाल होते ही वे फिर चुगने लगते हैं। पानी, बांस और पेड़ों के इलाके ही चीतल पसन्द करते है।

चीतल का आकार क्षेत्र-विशेष के हिसाब से बड़ा या छोटा होता है। दक्षिण में चीतल की ऊंचाई उत्तर के चीतल की अपेक्षा छोटी होती है और सींग बहुत सुन्दर होते हैं। भारतीय वनश्री का प्रतीक चीतल जिन स्थानों में रहता है वे बड़े मनोहर होते हैं। घने विशाल साल के [illegible] से लगी वल्लरियां,

नाल-नाल जंगल नाले और पास ही कालीन जैसे घास के मैदान उनकी रहने की जगह है। अपने चर्म-सौन्दर्य के लिए चीतल अद्वितीय है। उनकी सफेद चित्तियों के कारण यह नहीं समझना चाहिए कि वे आसानी से दिखाई पड़ जाते होंगे। उनका रंग सूखी पत्तियों में मिल जाता है और सफेद चित्तियां ऐसी लगती हैं, मानो पेड़ों से छन कर धूप आ रही हो।

आंक साल में एक बार अपने सींग गिराता है और सींग गिराने के बाद सींग की हड्डी, जिस पर वे चढ़े रहते हैं, कुछ तकलीफ देने वाली हो जाती है और मखमल-सी दिखाई पड़ती है। आंक के सींग जंगलों में पड़े मिल जाते हैं। गांव वाले उन्हें उठा लाते हैं और पसली के दर्द पर घिस कर लगाते हैं।

सांभर

सांभर हमारे देश के बारहसिगों के वश मे सबसे बड़ा जानवर है। सांभर 4-5 फुट ऊंचे और 7-8 फुट लम्बे होते हैं। वडे साभर का वजन 550 पौंड तक होता है। बढ़िया और बड़े-से-बड़े सांभर 700 पौंड के भी पाए गए हैं। हिमालय मे सांभर लगभग 8-10 हजार फुट की ऊंचाई पर पहाड़ों में रहता है। वैसे, राजस्थान और पंजाब को छोड़ कर वह सभी घने जंगलों मे रहता है। आश्चर्य है कि इतने भारी शरीर तथा नर के 3-4 फुट लम्बे तीन शाखाओ वाले सींगों के बावजूद वह बड़ी आसानी से पहाडी स्थानों में निवास करता है। उसके शरीर का रंग कत्थई होता है, जो नीचे हल्का हो जाता है। मादा नर की अपेक्षा छोटी होती है, उसके सींग नहीं होते

तथा वह 5-6 मास में एक बच्चा देती है। अपने विशालकाय सुन्दर सींगों के कारण सांभर का बहुत अधिक शिकार खेला जाता है और वे इतने मारे गए हैं कि बहुत बड़े सींगों के सांभर अब उपलब्ध नहीं हैं।

सांभर रात में चरने वाला पशु है और अगर वह इतना सतर्क न होता, तो खतम हो गया होता। वह बड़ी टोलियों में नहीं रहता, 4-6 की ही टोली रहती है। दिन में सांभर घने जंगलों में छिपा रहता है, धूप उसे पसन्द नहीं है। गरमियों में वह बड़े मज़े से पानी में लोटता है। नर जब अपने बड़े सींगों के फैलाव के साथ सतर्क खड़ा होता है, तो बड़ा शानदार दिखाई देता है। नील गाय की तरह ही वह भी केवल भारी राइफल से गिराया जा सकता है।

रात्रि के समय जब नर एक लम्बी और धीमी रंभाने की आवाज़ करता है, तब वह सारे जंगल में प्रतिध्वनित हो जाती है। नर बहुत भारी होते हैं। घास और पत्तियां ही उनकी खास खुराक हैं तथा रात में वे समीपवर्ती खेतों में खूब चरते हैं। पेड़ों के कोमल कल्ले और शाखाएं सांभर के बड़े स्वादिष्ट भोजन हैं।

हिमालय के टिहरी-गढ़वाल इलाके में उसे 'जड़ाऊ' भी कहते हैं और वहां के रहने वाले जंगली सूअर के मांस की तरह उसके मांस का भी अचार डालते हैं और उसे बड़ा स्वादिष्ट बताते हैं। मध्य प्रदेश में पहले बहुत बड़े-बड़े सांभर मिलते थे और हिमालय में और भी बड़े आकार के सांभर पाए जाने के रेकार्ड थे, पर अब न केवल उनकी संख्या ही घट गई है, बल्कि बड़े नमूने तो बिल्कुल ही मिट गए हैं। नीलगिरि पर्वत तथा अन्य स्थानों का सांभर छोटा होता है। कछार क्षेत्र में

साभर के बच्चों के जन्म के समय चकत्ते होते हैं, जो बाद में लुप्त हो जाते हैं।

सांभर गाय और नील गाय की भांति लात मारता है और जिसके वह लात पड़ जाए, वह मर ही जाता है। यदि जंगली कुत्ते इसके पीछे पड़ जाते हैं, तो वे इसे मार कर ही पीछा छोड़ते हैं। उनसे यह पानी में भी नही बच पाता।

गौड (दलदल का बारहसिंगा)

गौड या दलदल का बारहसिगा (स्वैम्प डियर) असम से लगा कर हिमालय की तराई तक पाया जाता है। स्वभाव से यह दिन में चरता है। यह घास, पेड़ और बाढ़ के इलाके का जानवर है। पहले तो गौड बहुत बड़ी संख्या में पाए जाते थे, पर अब मार डाले जाने के कारण ये बहुत कम हो गए हैं। अन्य बारहसिंगों की अपेक्षा इसकी यह खूबी है कि इसके सीगों में तीन से अधिक शाखाएं होती हैं।

गौड कुछ बड़े बारहसिगे होते हैं। इनकी लम्बाई पौने-चार फुट से लगा कर चार फुट तक होती है। जाड़ों में इनका रंग पीलापन लिए बादामी होता है, पर गरमियों में ऊपरी भाग लालिमा लिए भूरा होता है। छोटे बच्चो पर चित्तियां होती हैं।

असम मे नर इक्के-दुक्के भी देखे जाते हैं, पर वैसे ये झुंड मे रहते हैं। गौड जंगल मे कभी भले ही चले जाएं, पर ये जंगल के बाहरी किनारों पर ही चरना अधिक पसन्द करते हैं। ये कभी रात में नही चरते।

काकड़

हमारे देश में काकड़ (बार्किंग डियर) पहाड़ के सभी जंगलों में पाया जाता है और हिमालय में लेखक ने इसको आठ हज़ार फुट की ऊंचाई तक देखा है। मैदानी इलाकों से काकड़ बचता है। टिहरी-गढ़वाल के सामने वाले रवैट पर्वत पर आठ हज़ार फुट की ऊंचाई पर लेखक ने इसको मारा है और कुशकल्याण पर्वत चोटी से नीचे रिंगाल के जंगल में इसको बुलाने की कोशिश की है। इस छोटे-से पशु की 'भाउ-भाउ' की आवाज़ अनभिज्ञ व्यक्ति को आतंकित कर देती है। इसके बच्चे की पतली-सी आवाज़ 'टीं-टीं' होती है। चौड़ी पत्ती को दुहरा कर मुंह से बजाने से वैसी ही आवाज़ निकलती है। झाड़ी की आड़ में से वैसी आवाज़ करने से काकड़ आ जाता है। रिंगाल के घने जंगल में झाड़ी के पीछे से जैसे ही लेखक ने आवाज़ की, तो दूर पर काकड़ बोला और काकड़ के आने से पहले ही उस

आवाज पर बाघ आ गया। खैर यह हुई कि 10-12 फुट की दूरी से बाघ ने देख लिया और गुर्रा कर भाग गया।

काकड़ की लम्बाई केवल तीन फुट होती है और ऊंचाई दो फुट। नर के दो शाखाओं वाले सात-आठ इंच लम्बे सींग होते हैं। मादा के सींग नहीं होते। काकड़ का रंग गहरा बादामी होता है, जो नीचे को हल्का और ऊपर गहरा हो जाता है। पेट और नीचे का भाग सफेद होता है। बच्चे पर चित्तियां होती हैं।

यह झुंड में नहीं रहता, इक्का-दुक्का ही पाया जाता है। यों तो यह सुबह और शाम बोलता है, पर आतंकित होने पर प्राय बोला करता है। शेर-बाघ आने अथवा और कोई संदिग्ध बात होने पर यह एकदम भागता है, खड़ा होकर बोलता है, फिर भागता है। आदमी को देख कर भी यह भाग खड़ा होता है। भागने में यह बड़ा ही दक्ष है। सघन झाड़ियां, पेड़, बेलें, किसी में भी यह नहीं उलझता। भागने में एक प्रकार की खटर-खटर करता है, शायद मुंह से करता हो। इस आवाज़ के बारे में पता नहीं कि यह कैसी होती है। नर के ऊपर के जबड़े में दो बड़ी कांपें होती हैं, जो थोड़ी मुड़ी होती हैं और नीचे की ओर बाहर दिखाई देती हैं। ये कांपें ही इसकी रक्षा के हथियार हैं। किसी जानवर की पकड़ में आ जाने पर इन्हीं कांपों से यह उसे मारता है। नासमझ आदमी अगर घायल काकड़ को पकड़ ले, तो यह उसे भी घायल कर देता है। कांपों से बड़े तेज घाव होते हैं।

बारहसिंगा के खानदान का होने के कारण यह अपने सींग भी गिराता है, पर पूरे सींग नहीं गिराता।

मांस खाने वाले कहते हैं कि इसका मांस कुछ खटास लिए होता है । जंगल का यह प्रहरी है, क्योंकि शेर और बाघ जब मार पर आते हैं, तब काकड़ आतंक का सिग्नल देता है । शिकारियों का यह बड़ा भारी मददगार है ।

कस्तूरा

कस्तूरा या कस्तूरी मृग हिमालय का एक छोटा और सुन्दर हिरन है । नर और मादा, दोनों के ही सींग नहीं होते । हमारे देश में कश्मीर से लगा कर हिमाचल प्रदेश, टिहरी-गढ़वाल, कुमाऊं और सिक्किम में कस्तूरा पाया जाता है । गरमियों में कस्तूरा आठ हज़ार फुट से नीचे नहीं जाता । वैसे 9-10 हज़ार फुट की ऊंचाई पर यह प्रायः मिलता है । लेखक ने इसे 9 हज़ार फुट की ऊंचाई पर टिहरी के कुशकल्याण नामक स्थान में जुलाई के महीने में देखा था ।

अन्य घास-पात के अतिरिक्त यह केदारपत्ती खाता है, जो बड़ी सुगंधित होती है। इसके मलमूत्र में भी बड़ी सुगंध होती है। कस्तूरी का नाफा नर में ही पाया जाता है। नाभि के पास एक छोटी थैली—नाफा—होती है, जो दो वर्ष की आयु में तरल पदार्थ के रूप में होती है। नाभि की थैली के मुंह को दबा कर कस्तूरी निकाली जाती है। तब उसमें इतनी तीव्र गंध होती है कि सही नहीं जाती। मुह पर कपडा बांध कर कस्तूरी निकाली जाती है। बाद में, वह कस्तूरी काली और कड़ी हो जाती है। एक थैली में एक औंस कस्तूरी निकलती है। मुह और नाक खोल कर कस्तूरी निकालने से नाक से खून निकलने लगता है। असली कस्तूरी एक चावल-भर दूध या चाय में खाने से भयंकर जाड़ों में भी पसीना आ जाता है।

कस्तूरा की ऊंचाई बीस इंच और लम्बाई तीन फुट से अधिक नही होती। कस्तूरा का रंग गहरा भूरा होता है और कहीं-कहीं सलेटी चित्तियां पड़ी होती हैं। नीचे का भाग हल्के रंग का होता है। बच्चों के बदन पर बादामी या सफेद चित्ते होते हैं। इसके बदन के बाल लम्बे, कड़े तथा लहरदार होते हैं। पिछली टांगें सामने की टांगों की अपेक्षा कुछ बड़ी होती हैं। इसलिए भागने में यह खरगोश-जैसा लगता है। कस्तूरा के कान अपेक्षाकृत बड़े होते हैं। सबसे अजीब बात जो कस्तूरा मृग में होती है, वह यह कि अन्य हिरनों के नरों की भांति इसके सींग नहीं होते। इसके अतिरिक्त, ऊपरी होंठ में दो बाहर निकली, नीचे की ओर झुकी, तीन-तीन इंच लम्बी कांपें होती हैं। मादा कस्तूरा के न सींग होते हैं, न दांत। नर की पूछ मादा की पूंछ से बडी होती है और उसमें एक बालों का गुच्छा होता है।

खुर तो कस्तूरा के चट्टानों पर कूदने के उपयुक्त बने ही होते हैं, जिससे वह पूरी तेज़ी से खतरनाक चट्टानों पर दौड़ सकता है।

कस्तूरा का बड़ा शत्रु हिम बाघ है। जब मादा के बच्चा होता है, तब हिमालय का बड़ा उकाब भी उसे उठा ले जाने को तैयार रहता है। मादा कस्तूरा बच्चे की रक्षा टांगों और सिर से करती है। मादा बच्चों को साथ नहीं रखती। वह दो बच्चों को जन्म देती है, तो उन दोनों को भी अलग-अलग रखती है और वहीं जाकर उन्हें दूध पिला आती है। कस्तूरा बड़ा लजीला जानवर है और आदमी की गंध से ही भाग जाता है।

चोरी-चोरी कस्तूरा इतना मारा गया है कि यदि उसे संरक्षण नहीं मिला, तो उसके बिल्कुल खतम हो जाने की आशंका है। जिन क्षेत्रों में कस्तूरा पाया जाता है, वहां के लोग उसे जाल में फंसा कर मार लेते हैं और असली कस्तूरी को राजस्थान तथा अन्य स्थानों में अमीरों को बड़ी-बड़ी ऊंची कीमतों पर बेचते हैं।

वरड़

बरड़ को केवल किताबों से जानने वाले लोग भरल कहते हैं। गढ़वाल, लद्दाख और कुमाऊ में यह हमारे देश मे पाया जाता है और जहां यह होता है, वहां लोग इसे बरड़ कहते हैं। बरड भेड़ और बकरे के बीच का जानवर है और अंग्रेजी में इसे 'तिब्बत की नीली भेड' कहते है। यह हिमालय की मुख्य धुरी का जानवर है और विशेषकर उत्तर की ओर का। हमारे देश में यह हिमालय से सटे प्रदेशों में, जहां बरफ पड़ती है और जहां घास के चटियल पहाड है, रहता है। जंगल और झाड़ियों से बरड बचता है। गरमियों में यह सोलह हजार फुट तक की ऊंची चट्टानो मे रहता है और जाड़ों में दस हजार फुट से नीचे नही उतरता। स्मरण रहे, यह झुंड में रहने वाला जानवर है। पहले इसके बहुत बड़े झुंड पाए जाते थे, पर मांस और ऊन के कारण इसका खात्मा कर दिया गया है।

बरड़ का सबसे बड़ा दुश्मन हिम बाघ है। चट्टानों में जब यह बैठता है, तब आस-पास की चट्टानों और घासों का अंग-सा लगता है और बिना गति के दिखाई नही पड़ता।

हमारे देश के ऐसे जानवर मौसम के हिसाब से भारत की सीमा पार कर तिब्बत की ओर भी चले जाते हैं और फिर आ जाते हैं। लेखक ने बरड़ को गंगोत्री के निकट भैरों घाटी से आगे जाड़ गंगा के किनारे नीलंग दर्रे के निकट के पहाड़ पर लगभग ग्यारह हज़ार फुट की ऊंचाई पर 10-12 की टोली में देखा है।

बरड़ के शरीर का धूमिला नीला रंग स्लेटी-जैसा होता है। टांगें काली होती हैं। बरड़ की ऊंचाई ढाई-तीन फुट होती है। सींग घूमे हुए, पर बाहर की ओर फैले-फैले-से होते हैं। नर के सींग मादा के सींगों से बड़े होते हैं। मादा नर की अपेक्षा छोटी होती है। बरड़ पहाड़ों पर चढ़ने में अत्यन्त कुशल होते हैं। दल की रक्षा के लिए दो-एक बरड़ पहरा देते रहते हैं। यह बहुत ही भीरु पशु है।

घुएड़

घुएड़ एक प्रकार का जंगली बकरा है। जो लोग हिमालय से परिचित नहीं हैं अथवा वहां के रहने वालों की बोली नहीं समझते, वे इसे अंग्रेज़ी किताबों से पढ़ कर गुरल कहते हैं। पर जहां यह होता है, वहां यह घुएड़ कहलाता है। हिमालय में तीन हज़ार फुट की ऊंचाई से आठ हज़ार फुट की ऊंचाई पर यह पाया जाता है। ऊंची-नीची जगहें इसे बहुत पसन्द हैं और पूरी तेज़ी से यह वहां भाग सकता है। रात को यह ऐसे ऊंचे कंगूरे पर वास करता है, जहां बाघ भी इसे आसानी से नहीं पा सकता। देहरादून से सहारनपुर मोटर से आते समय धौलखंड की पहाड़ियों में प्रातः और सायं चार-चार, पांच-पांच की टोलियों में यह चरता दिखाई देता है। घुएड़ बड़ा सतर्क रहता है और

काला हिरन

चीतल

सांभर

उन अगम्य चट्टानों पर इनके शिकार करने का मजा वही आदमी ले सकता है, जो ऐसे स्थानों पर चढ़ने में प्रवीण हो। इसका पीछा करना बड़ा ही मनोरंजक होता है। मांस खाने वाले बताते हैं कि इसका मांस बड़ा ही कोमल और स्वादिष्ट होता है।

घुएड़ की ऊंचाई 27 इंच होती है और लम्बाई चार फुट होती है। इसके छोटे और कड़े बाल तथा मजबूत टांगें होती हैं। रंग सलेटी होता है, जो नीचे हल्का हो जाता है। पीठ पर काली धारी होती है। नर और मादा, दोनों के सींग होते हैं। नर के सींग मादा के सींगों से बड़े होते हैं, जो 6 से 8½ इंच तक के होते हैं। घुएड़ के सींग पीठ की तरफ एक-से झुके हुए होते हैं।

यह प्रायः शाम और सुबह चरने को निकलता है। धूप में चरना घुएड़ को बिल्कुल पसन्द नहीं है और जिस दिन बदली होती है, उस

दिन यह दिन भर चरता है। इसका रंग आसपास की घास में ऐसा मिल जाता है कि यदि यह गतिशील न हो, तो कोई जान नहीं सकता कि घुएड़ बैठा है। बाघ भी बड़ी चालाकी से ही इसे पकड़ पाता है।

लगभग 5 हज़ार फुट ऊंची एक पहाड़ी के एक भयंकर कंगूरे के नीचे एक घुएड़ को लेखक ने चौकन्ना खड़ा देखा था। सामने कई फर्लांग गहरी सीधी खड्ड थी और उसके दूसरी ओर थोड़े नीचे स्तर पर अनुमानतः 15 फुट दूर तक एक चट्टान थी। सायंकाल के 4½ बजे इस तरह घुएड़ को चौकन्ना देख कर उसकी गतिविधि देखने को मन चाहा, क्योंकि मालूम होता था कि वह किसी खतरे में शंकित था। ज़रा देर बाद ही दो बाघों ने उसे दोनों ओर से घेरा। ऊपर कंगूरा था, और नीचे चार फर्लांग गहरा खड्ड। स्पष्ट था, वह बघेरों का भोजन बनता। पर जैसे ही घुएड़ ने बाघों को देखा, वैसे ही पीछे हट कर उसने तेज़ गति से आगे को ऐसी छलांग भरी कि वह खड्ड के दूसरी ओर चट्टान पर खड़ा दिखाई दिया। बाघ अपना-सा मुंह लेकर देखते रह गए।

थार

यह तिब्बत की भेड़ है, जो भारत और तिब्बत की सीमा को आर-पार करती रहती है और तिब्बत की ओर ही अधिक रहती है, पर थार भारतीय हिमालय का जंगली बकरा है, जो हमारे ही देश में कश्मीर से लेकर हिमाचल, गढ़वाल, कुमाऊं और नेपाल तक पाया जाता है। अन्य बकरों से इसमें एक विशेषता यह है कि जहां अन्य बकरियों के सींग [illegible] होते हैं, [illegible] थार के [illegible] होते हैं।

नर थार की ऊंचाई तीन फुट से सवा तीन फुट तक होती है। मादा छोटी होती है। इसके बढ़िया बड़े सींग 12 इंच से लगा कर 15 इंच तक होते हैं। पर मादा के सींग 10 इंच से अधिक नहीं होते। थार का ऊपरी रंग भूरा या कत्थई होता है और नीचे का हल्का। पैरों का सामने का भाग काला-सा लगता है। नर की, अन्य बकरों के समान, दाढ़ी नहीं होती। बच्चे पीले रंग के होते हैं।

थार घने जंगल और अगम्य तथा भयानक चट्टानों में रहता है, जहां ऊंचे पेड़ भी हों। पुराना नर थार तो विशेषकर भयानक चट्टानों और जंगलों में रहना पसन्द करता है। मादा जंगल के बाहर भी आ जाती है। उन कंगूरों पर, जहां आदमी की पहुंच नहीं होती, थार कूदता-फांदता रहता है। हमारे अनुभव से ऐसे स्थानों में एक पुराने नर थार का शिकार करना, 15 शेरों के शिकार के बराबर है। उन भयानक चट्टानों, टूटी दरारों और खतरनाक कंगूरों में आदमी का पहुंचना आसान काम नहीं। कदम-कदम पर खड्ड, चट्टान

पर लेट कर राइफल दागने से चट्टान टूटने का खतरा । अवकाश प्राप्त डिवीज़नल फारेस्ट अफसर श्री हकीमुद्दीन का सारा जीवन जंगलों में शिकार खेलते बीता है । थार के शिकार के सम्बन्ध में वे हमारी बात से सहमत हैं कि नर थार जिस क्षेत्र में रहता है, उसमें उसका शिकार अत्यन्त कठिन है । थार की ही भांति कंगूरों पर सन्तुलन रख सकने वाला और प्रति क्षण खड्ड में गिर कर मरने को तैयार रहने वाला व्यक्ति ही उसका शिकार खेल सकता है ।

नीलगिरि का जंगली बकरा

नीलगिरि पर्वत का जंगली बकरा भी हमारे देश का बड़ा प्रसिद्ध बकरा है । इसे तमिल में 'वरै आडु' कहते हैं । यह पश्चिमी घाट से कुमारी अन्तरीप तक और नीलगिरि तथा अनामलाई पर्वत श्रेणी पर पाया जाता है । समुद्र-तट से चार हज़ार फुट से छः हज़ार फुट तक की ऊंचाई पर यह रहता है । कभी-कभी नीचे भी आ जाता है । नीलगिरि बकरे की ऊंचाई साढ़े-तीन फुट तक होती है और इसके सींग बारह से सोलह इंच तक लम्बे होते हैं । बाल मोटे और कड़े होते हैं तथा रंग गहरा बादामी और पीठ पर गहरी धारियां होती हैं ।

यह ढलवां पहाड़ियों पर रहना पसन्द करता है और चट्टानों के नीचे की ओर छोटी-छोटी ढलवां पहाड़ियों पर चरा करता है । इसके 5-6 से लगा कर 50-60 तक के झुंड होते हैं । मादा प्रहरी का काम करती है । इस बकरे के दो दुश्मन होते हैं । एक तो, बघेरा और दूसरा, आदमी । इसके छोटे बच्चे प्रत्येक मौसम में मिलते हैं ।

साकिन

साकिन, अर्थात् 'हिमालयन आइबैक्स' भारत के हिमालय प्रदेश का एक प्रसिद्ध जंगली बकरा है। यह तिब्बत और भारत को विभाजित करने वाली हिमालय की पंक्ति पर कश्मीर से गोमुख तक ही पाया जाता है। एक अंग्रेज लेखक के मत से सन् 1854 तक साकिन कई-कई सौ के झुंड में मिलता था, पर अब यह बहुत कम रह गया है। इस जाति के बकरे और देशों में भी पाए जाते हैं और उनके चार प्रकारों में से हिमालय की यह जाति एक विशेष जाति है। साकिन के काले बालों की बड़ी शानदार दाढ़ी होती है, जो सात-आठ इंच तक लम्बी होती है।

एक पूरे नर की ऊंचाई 42 इंच होती है। नर के सींगों की लम्बाई 36 से 50 इंच होती है, जो पीछे की ओर मुड़े रहते हैं।

मादा के सींग अधिक-से-अधिक बारह इंच के होते हैं। नर साकिन का रंग भूरा और पीलापन लिए होता है, पर मादा के रंग में लालिमा होती है।

साकिन थार से भी ऊंचे स्थान पर रहता है और अगम्य कंगूरों तथा हिमाच्छादित स्थानों पर ही मिलता है। वह हिम-अंधड़ से परेशान होकर भले ही कभी-कभी नीचे उतर आता है। वसन्त ऋतु में जब घास के नए कल्ले जमने लगते हैं और बर्फ पिघल जाती है, तब वह उन कल्लों को चरने आता है। साकिन की दृष्टि बहुत तेज़ होती है, पर घ्राण-शक्ति इतनी तेज़ नहीं होती। साकिन को सदा नीचे से ही खतरा प्रतीत होता है; अतः होशियार शिकारी साकिन को पीछे से ऊंची चट्टान पर चढ़ कर मारते हैं।

अपने लम्बे बालों और पश्मीने के कारण उसे ठंड की कोई चिंता नहीं। साकिन बहुत ही चौकन्ना जानवर है। गरमी और जाड़े में इसके शरीर का रंग बदला करता है। गरमी में भूरा और पिलछौंह रंग होता है, जब कि जाड़ों में पिलछौंह रंग सफेदी में बदल जाता है।

साकिन गिरोह बांध कर रहने वाला जानवर है।

मारखोर

मारखोर हमारे देश के एक बहुत सीमित क्षेत्र में, यानी कश्मीर की चनाब घाटी से कश्मीर की बाहरी सीमा तक, ही पाया जाता है। थोड़ा आगे सुलेमान पहाड़ की ओर भी यह पाया जाता है। आकार में मारखोर साकिन से बड़ा होता है, पर भारी होने पर भी वह दुर्गम पहाड़ियों पर चढ़ने में अद्वितीय होता है।

मारखोर पांच फुट लम्बा और सवा-तीन फुट ऊंचा होता है। करीब चार फुट लम्बे सींग साकिन की तरह पीठ की ओर मुड़े न होकर ऊपर को सीधे ऐंठे और घुमावदार होते हैं। नर के लम्बी काली दाढ़ी होती है तथा गरदन और छाती भी लम्बे बालों से ढंकी रहती है। मारखोर का रंग गरमियों में भूरा-सा होता है, पर शरद् ऋतु में यह मटमैला सफेद हो जाता है। नर मारखोर में से सदा एक तेज दुर्गन्ध आती है। इस बात का अभी तक पता नहीं चल पाया कि

इसका नाम मारखोर क्यों पड़ा, क्योंकि मारखोर का अर्थ है मार (सांप) को खाने वाला।

कश्मीर भारत की शोभा है और मारखोर तथा कश्मीरी बारहसिंगा कश्मीर के अतिरिक्त हमारे देश में अन्यंत्र किसी भी क्षेत्र में नहीं मिलते।

हंगल (कश्मीरी बारहसिंगा)

हंगल ही असली अर्थों में शुद्ध बारहसिंगा है और भारत को कश्मीर की देन है, क्योंकि कश्मीर के अतिरिक्त हमारे देश में हंगल और कहीं नहीं पाया जाता। हंगल चीड़ के सघन वनों में दस-बारह हजार फुट की ऊंचाई पर रहता है।

हंगल सबसे भारी बारहसिंगा है। यह सवा-चार फुट ऊंचा और साढ़े-सात फुट तक लम्बा होता है। नर के तीन फुट लम्बे सींग होते हैं और प्रत्येक सींग में पांच शाखाएं होती हैं। नर की गरदन पर ऊपर तथा नीचे बड़े-बड़े बाल होते हैं। हंगल का रंग भूरा और सलेटी होता है और पूंछ के चारों ओर वह सफेद होता है। गरमियों में यही रंग चमकदार होकर लालिमा ले लेता है।

नर हंगल मार्च के आसपास सींग गिराते हैं, जो अक्तूबर में फिर निकल आते हैं और इसी समय नर और मादा साथ-साथ रहते हैं। इन्हीं दिनों नर जंगल में लम्बी रंभाने की-सी आवाज करता रहता है।

हंगल जंगल और जंगल के करीब, जहां घास तथा पानी हो, रहना पसन्द करता है। एक ही जगह रहना इसे पसन्द नहीं है।

साँभर

गिरगिट

घड़ियाल

नाग

सांप और

गोह

हमारे देश में तीन तरह की गोहें होती हैं—(1) साधारण गोह, (2) चन्दन गोह, और (3) कबरी गोह।

साधारण गोह

साधारण गोह सारे भारत में पाई जाती है। इसकी लम्बाई 5-6 फुट होती है। इसके पैर बहुत मजबूत होते हैं। कहा जाता है कि चोर और सेना के कुछ विशेष आदमी इसे इसलिए रखते थे कि इसकी कमर में रस्सा बांध कर दीवार के ऊपर फेंक देते थे और जब यह पंजों से पकड़ लेती थी, तब रस्से के सहारे वे ऊपर चढ जाते थे। कहते हैं कि एक किले को जीतने में शिवाजी की मदद गोह ने इसी तरह की थी। गोह किसानों का हितैषी जानवर है। इसकी खुराक मेंढक, कीड़े-मकोड़े और चूहे हैं।

गिरगिट

गिरगिट हमारे देश का एक प्रसिद्ध जानवर है। इसको कैंटिया, गिदगिदा या गिद्दा भी कहते हैं। झाड़ियों तथा पेड़ों में यह रहता है और मकानों में भी आ जाता है। कीड़े-पतंगे इसकी खुराक हैं। झींगुर और बिच्छू तक को गिरगिट नहीं छोड़ता। इसके बारे में यह बात बहुत कम लोगों को मालूम होगी कि इसकी जीभ 12-13 इंच लम्बी होती है, जिसकी नोक पर एक चम्मच-सा होता है, जिस पर लसदार पदार्थ होता है। इसके कारण यह अपने शिकार को बड़ी दूर से बिजली की गति से पकड़ता है और शिकार चिपका चला आता है। हमने कई बार बड़े-बड़े बिच्छू डोरे से बांध कर बबूल पर छोड़ दिए। गिरगिट आया और बिच्छू के सामने बैठ कर उसने इस तेज़ी से उसे पकड़ा कि समूचा बिच्छू उसके मुंह में चला गया, केवल डंक और दो गड़रे बाहर रह गए। धीरे-धीरे उसने बिच्छू निगलना शुरू किया। आधे घंटे में वह सारा बिच्छू खा गया और डंक कतर कर उसने फेंक दिया। केवल एक बिच्छू ही एक बार डंक

मार सका और डंक के आघात से तिलमिला कर गिरगिट भाग गया।

गरमियों में गिरगिट सिर की ओर काला और लाल हो जाता है और सिर हिलाने से उसकी गरमी बढ़ जाती है। जब गिरगिट बहुत लाल हो जाता है, तब गांव वाले जान जाते हैं कि वर्षा आने वाली है। मौसम और रहने के स्थान के अनुरूप उसका रंग मटमैला या हरा हो जाता है। मादा गिरगिट रंग नहीं बदलती, केवल नर ही रंग बदलता है।

ऊदबिलाव

ऊदबिलाव को अंग्रेजी में 'ओटर' कहते हैं । यह आकार में कई प्रकार का होता है, पर हमारे देश में एक ही प्रकार का ऊद-बिलाव पाया जाता है । नदियों के किनारे तथा झीलों में वह रहता है । लम्बाई में यह दो फुट होता है और इसकी पूछ डेढ़ फुट लम्बी होती है । पहली नजर में यह ऐसा मालूम पड़ता है, मानो नेवले के आकार को बढ़ा दिया गया हो, पर टांगें छोटी ही रहने दी गई हों ।

ऊदबिलाव के शरीर पर बालों की दो तहें होती हैं तथा उसका समूर बड़ा उपयोगी होता है । इसके बदन का ऊपरी भाग भूरा और ललछौंह लिया होता है । शरीर के नीचे का हिस्सा पूछ, गला और टांगों का भीतरी भाग सफेद होता है । इसका वजन लगभग 15 पौंड से लगा कर 20 पौंड तक होता है ।

ऊदबिलाव के पंजों पर बत्तख की तरह एक झिल्ली लगी रहती है, जिससे वह बड़ी आसानी से तैर सकता है । ऊदबिलाव प्रायः टोलों में ही रहते हैं और टोली में ही शिकार करते हैं । ऊद-बिलाव की खास खुराक मछली है जिसमें से वह थोड़ा भाग खाता

है और रद्दी को नदी के किनारे फेंक देता है । अर्धचन्द्राकार बना कर ऊद की टोली नदी में शिकार करती है । ऊद की आंखों पर मगर की-सी झिल्ली होती है, जिसके कारण उसकी आंखों में पानी नहीं जाता । रहने के लिए वह नदी किनारे अपना भिटा बनाता है । भिटा पानी की सतह के निकट होता है, ताकि आतंक के समय एकदम पानी में कूद पड़े। लोमड़ी की भांति उसके भिटे के भी कई मुह होते हैं ।

जन्म के समय ऊद के बच्चों की आखें खुली नही होती हैं । मादा ऊद बच्चों को बेहद प्यार करती है और उनकी रक्षा की खातिर अपने प्राण भी दे देती है । यदि छोटे ऊद को पकड़ लिया जाए, तो वह आसानी से पल जाता है और कुत्ते की भांति अपने मालिक के साथ चलता है । ऊद की सूघने की शक्ति भी बड़ी तेज होती है । यदि पालतू ऊद को 10-15 मीटर दूर छोड़ दिया जाए और छोड़ने वाला आंख बचा कर चला जाए, तो ऊद अपने मालिक के पास बड़ी आसानी से आ जाता है ।

ऊद अंडो को भी बड़े चाव से खाता है । मछली के अभाव में यह अपनी गुजर साग-भाजी और चिड़ियों से कर लेता है ।

ऊद के दांत मजबूत और नुकीले होते हैं और उसकी दाढ़ों पर नुकीली गांठें होती हैं । कीलों की नोकें भीतर को मुड़ी होती हैं । एक बार जब ऊद शिकार पकड़ लेता है, तो वह चंगुल से निकल नही सकता ।

ऊदबिलाव अपनी रक्षा के लिए भयंकर लड़ाई लड़ता है और अन्तिम सांस तक लड़ाई जारी रखता है । हर एक कुत्ता इससे

नष्ट भी नहीं करता । बस, ऊदबिलाव के शिकार के लिए जो कुत्ते होते हैं और जिन्हें ऊदशिकारी कुत्ते कहते हैं, वही उन्हें भुगत पाते हैं ।

हमारे देश के शीतप्रधान क्षेत्रों की नदियों में पाए जाने वाले ऊदबिलाव की खाल को लोग कपड़ों के अस्तर में लगवाते हैं । वहां इसका मांस भी खाया जाता है ।

मछलियों का शत्रु और भयंकर लड़ाका ऊद अजगर को भी मार बैठता है । मेजर कार्बेट ने लिखा है कि एक विशालकाय अजगर एक झील में रहता था । उसको चिड़ियाघर के लिए पकड़ने का प्रबन्ध था, पर एक ऊदबिलाव के जोड़े ने उस अजगर को मार डाला ।
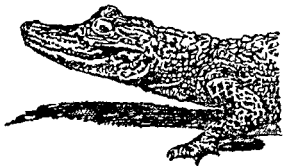
मगर

समुद्री मगरों को छोड़ कर हमारे देश में तीन प्रकार के मगर होते हैं। सुविधा और सरलता के लिए उन्हें हम इन वर्गों में विभाजित कर सकते हैं—(1) मगर, (2) घड़ियाल, और (3) दलदल का छोटा मगर। हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों के विभिन्न ज़िलों में इसके विभिन्न नाम हैं, इसलिए सुविधा और जानकारी के लिए इसके विषय में हम कुछ लिखेंगे। यहां मगर और घड़ियाल का ही वर्णन दिया जाता है।

मगर का थूथन लम्बा न होकर बिल्कुल छिपकली जैसा होता है। हां, छिपकली के दांत नहीं होते, पर मगर के बड़े-बड़े दांत होते हैं और थूथन के नीचे के बड़े दांत ऊपरी थूथन में बने छेदों में सट जाते हैं। मगर का शरीर मुटापा लिए होता है और गरदन काफी चौड़ी होती है। मगर इतने मारे गए हैं कि अब 10-12 फुट के मगर भी नहीं मिलते। अब तो सात फुट के मगर मिल जाएं, यही बहुत है। अंग्रेजी के 'स्नबनोज्ड' या चपटे थूथन वालों को मगर कहते हैं। इसे कहीं भोट

नागराज

[illegible] जहरीले सांपों में दो प्रकार [illegible] सबसे अधिक खतरनाक हैं। एक तो, अफ्रीका [illegible] मम्बा, और दूसरा, हमारे देश का नागराज, जिसे [illegible] 'किंग कोबरा' कहते हैं। नागराज मम्बा से अधिक खतर-[illegible] है या मम्बा नागराज से अधिक, इसके बारे में मतभेद [illegible] जानकारों के मत से नागराज अधिक खतरनाक होता है [illegible] जानकारों के मत से मम्बा अधिक खतरनाक है। पर मम्बा [illegible] में लिखा हुआ है कि जिस क्षेत्र में वह रहता है, वहां के [illegible] से भी अधिक मम्बा से डरते हैं। अपने क्षेत्र में मम्बा पशुओं [illegible] को नहीं आने देता, अकारण ही आक्रमण करके मार देता है। मम्बा की चपेट से ही आदमी मर जाता है। मम्बा पेड़ पर बैठा रहता है और खोपड़ी पर काट खाता है। इसलिए अफ्रीका के आदिम निवासी मम्बा के क्षेत्र में सिर पर गीली मिट्टी रख कर चलते हैं।

नागराज की लम्बाई 8 से 12 फुट तक होती है, पर 15-16 फुट की लम्बाई के नागराज भी पाए गए हैं। यदि कोई आदमी मोटर में बैठा हो, तो वह फन फैला कर इतना ऊंचा खड़ा हो जाता है कि [illegible] के सर पर वह आसानी से काट सकता है। इतना बड़ा सांप [illegible]ना ऊंचा खड़ा हो जाए, तो उसके आतंक का क्या ठिकाना!

ड़े शिकार को एकदम सटक कर
फ़र नोच-नोच- कर खाना पसन्द
ा ही नही कि घड़ियाल की बनावट

ात यह है कि घड़ियाल की मादा
के थूथन पर एक तूबा-सा होता
के नही होता । जब नर नदी में
बजती है और विशालकाय घड़ि-
ा बडा शानदार लगता है । लेखक
और मारा है । बहुत बडे घड़ियाल
। आठ-नौ फुट के हो जाने के बाद
विशेष में ही निकलता है । दस फुट
लना शुरू होता है । घड़ियाल गंगा,
नदियों में प्रायः पाया जाता है ।
ा इतना विनाश हुआ है कि उत्तर
ना पडा ।

और कहीं नाका कहा जाता है। मगर अपनी लम्बाई के हिसाव से आदमी से लेकर बैल तक को पकड़ लेते हैं। फिर, अपने शिकार को पानी में डुवो कर मार देते हैं और नदी किनारे वनी खोह में उसे ठूंस देते हैं। वाद में उसे सड़ा कर मांस तोड़-तोड़ कर खाते रहते हैं। सड़ा मांस मगर को वहुत पसन्द है। खुश्की में निकल कर वे गोवर भी खाते हैं। मगर जाड़ों में प्रातःकाल नौ-दस वजे सुवह से चार बजे शाम तक धूप की तेज़ी में पानी के किनारे पड़े तापते रहते हैं और तनिक-सा भी खटका होने पर पानी में सरक जाते हैं। विना सांस लिए भी मगर पानी के भीतर घंटों बने रहते हैं।

मगर के विषय में एक धारणा यह है कि उसकी पीठ की खाल इतनी कड़ी होती है कि उस पर गोली का कोई असर नहीं होता। यह बात बिल्कुल गलत है। हां, इतनी बात ठीक है कि पीठ की खाल किसी काम नहीं आती। सूटकेस और जूते, आदि पेट की खाल के बनते हैं। गरदन से पूंछ तक जितना भाग ज़मीन से लगा रहता है, वही मुलायम होता है और उतने भाग की खाल साबुत उतार ली जाती है, पेट चीर कर नहीं उतरती। मगर के पेट में हड्डियां और लोहा तक समय पाकर गल जाते हैं।

नदियों में जहां दह बन जाते हैं, वहीं मगर रहते हैं। जब मगर किसी जानवर को पकड़ता है, तो वह बिजली की गति से आक्रमण करता है। मुंह से पकड़ कर उस पर कांटेदार पूंछ इतनी ज़ोर से मारता है कि जानवर के पैर उखड़ जाते हैं और वह गिरने को होता है। बस, मगर उसे पानी में खींच ले जाता है। मार्च और अप्रैल के महीनों में पानी के किनारे नदी की रेतों में सुरंग-सी बना कर

ह अंडे देता है और उन्हें छोड़ जाता है। धूप और बालू की गरमी वे वर्षा से पूर्व ही तैयार होकर फूट जाते हैं और बच्चे निकल ते हैं।

मगर के मुंह में दोनों ओर 29 तक दांत होते हैं। जबड़े का पांचवां दांत सबसे बड़ा होता है और नीचे के जबड़े का चौथा दांत ऊपरी जबड़े के छेद में बैठ जाता है। इसलिए किसी जानवर को पकड़ने के बाद जब मगर अपना मुंह बन्द कर लेता है, तब उसका मुंह खोला नहीं जा सकता। मगर के शरीर पर कड़े शल्क होते हैं। पीठ के शल्कों के नीचे हड्डी होती है। गरदन पर चार चौड़े चौकोर शल्क होते हैं। मगर का ऊपरी रंग पानी में भीगे लोहे जैसा होता है, पर नीचे का रंग पीलापन लिए सफेद होता है।

लोगों का यह खयाल कि कोई आदमी मगर से पकड़े जाने और पेट में रखे जाने पर चाकू से पेट फाड़ कर निकल सकता है, बिल्कुल गलत है। यह बात असम्भव है, क्योंकि मगर के भयंकर विशालकाय जबड़े की पकड़ में एक बार आते ही आदमी बेहोश हो जाता है। फिर, मगर किसी भी प्राणी को जीवित तो सटकता नहीं, पहले पानी में दबोच लेता है। वहां जिन्दा बचने का प्रश्न ही नहीं रहता।

घड़ियाल

घड़ियाल के विषय में कुछ लोगों का यह मत है कि वह केवल मछली खाता है, क्योंकि उसका थूथन बहुत लम्बा और पतला-सा होता है। अंग्रेजी की बड़ी प्रामाणिक पुस्तक 'दि रायल नेचुरल

मगर और घड़ियाल अपने बड़े शिकार को एकदम सटक कर नहीं खाते हैं। वे तो मांस सड़ा कर नोच-नोच-कर खाना पसन्द करते हैं। इसलिए यह सवाल उठता ही नहीं कि घड़ियाल की बनावट केवल मछली खाने योग्य है।

घड़ियाल के बारे में एक बात यह है कि घड़ियाल की मादा को गोह कहते हैं। नर घड़ियाल के थूथन पर एक तूबा-सा होता है। यह तूबा मादा घड़ियाल के नहीं होता। जब नर नदी में चलता है, तब उसमें से सीटी-सी बजती है और विशालकाय घड़ियाल टारपीडो के समान जाता हुआ बड़ा शानदार लगता है। लेखक ने 16 फुट तक का घड़ियाल देखा और मारा है। बहुत बड़े घड़ियाल 25-30 फुट तक के हो जाते हैं। आठ-नौ फुट के हो जाने के बाद नर घड़ियाल का तूबा एक आयु-विशेष में ही निकलता है। दस फुट लम्बा हो जाने के बाद तूंबा निकलना शुरू होता है। घड़ियाल गंगा, महानदी, ब्रह्मपुत्र और सहायक नदियों में प्रायः पाया जाता है। खाल के लालच में घड़ियालों का इतना विनाश हुआ है कि उत्तर प्रदेश सरकार को इसे संरक्षण देना पड़ा।

हिस्ट्री' तक में घड़ियाल के विषय में लिखा है कि वह केवल मछली खाता है । इस बात के लिए कारण यह लिखा है कि उसका थूथन केवल मछली पकड़ने के लिए बना है । पर जिन नदियों में घड़ियाल पाए जाते हैं, उनके निकटवर्ती गांव वाले जानते हैं कि घड़ियाल मगर से कहीं अधिक खतरनाक है। लेखक ने घड़ियाल को बैल और बकरी पकड़ते देखा है। ऐसे आदमियों से लेखक मिला है, जो घड़ियाल के चंगुल से बचे थे और उनकी पीठ पर दांतों की खरोंचें थीं। घड़ियाल बड़ी मछली को नदी में से थूथन की टक्कर देकर उछाल कर फिर मुंह में गपक कर खाता है । बहुत बड़ी मछली को वह इतनी ज़ोर से किनारे पर पटकता है कि उसके अंजर-पंजर ढीले हो जाते हैं; और उसकी हड्डी से मांस छूट जाता है । एक बार एक घड़ियाल ने इसी तरह से पानी पीते हुए एक आदमी को खाना चाहा । आदमी को उसने इतने ज़ोर से ऊपर फेंका कि वह नदी के एक बहुत ऊंचे कगार पर जा गिरा और नीचे आदमी को गपक जाने को तैयार बैठा घड़ियाल टापता रह गया ।

मगर और घड़ियाल अपने बड़े शिकार को एकदम सटक कर नहीं खाते हैं । वे तो मांस सड़ा कर नोच-नोच कर खाना पसन्द करते हैं । इसलिए यह सवाल उठता ही नहीं कि घडियाल की बनावट केवल मछली खाने योग्य है ।

घड़ियाल के बारे में एक बात यह है कि घड़ियाल की मादा को गोह कहते हैं । नर घड़ियाल के थूथन पर एक तूबा-सा होता है। यह तूबा मादा घड़ियाल के नहीं होता । जब नर नदी में चलता है, तब उसमें से सीटी-सी बजती है और विशालकाय घडियाल टारपीडो के समान जाता हुआ बड़ा शानदार लगता है । लेखक ने 16 फुट तक का घड़ियाल देखा और मारा है । बहुत बड़े घडियाल 25-30 फुट तक के हो जाते हैं । आठ-नौ फुट के हो जाने के बाद नर घड़ियाल का तूंबा एक आयु-विशेष में ही निकलता है । दस फुट लम्बा हो जाने के बाद तूबा निकलना शुरू होता है । घडियाल गंगा, महानदी, ब्रह्मपुत्र और सहायक नदियों में प्राय: पाया जाता है । खाल के लालच में घड़ियालों का इतना विनाश हुआ है कि उत्तर प्रदेश सरकार को इसे संरक्षण देना पड़ा ।

नागराज

दुनिया के अत्यधिक ज़हरीले सांपों में दो प्रकार के सांप ही सबसे अधिक खतरनाक हैं। एक तो, अफ्रीका का मम्बा, और दूसरा, हमारे देश का नागराज, जिसे अंग्रेज़ी में 'किंग कोबरा' कहते हैं। नागराज मम्बा से अधिक खतरनाक होता है या मम्बा नागराज से अधिक, इसके बारे में मतभेद है। कई जानकारों के मत से नागराज अधिक खतरनाक होता है और कई जानकारों के मत से मम्बा अधिक खतरनाक है। पर मम्बा के विषय में लिखा हुआ है कि जिस क्षेत्र में वह रहता है, वहां के लोग शेर से भी अधिक मम्बा से डरते हैं। अपने क्षेत्र में मम्बा पशुओं तक को नहीं आने देता, अकारण ही आक्रमण करके मार देता है। मम्बा की चपेट से ही आदमी मर जाता है। मम्बा पेड़ पर बैठा रहता है और खोपड़ी पर काट खाता है। इसलिए अफ्रीका के आदिम निवासी मम्बा के क्षेत्र में सिर पर गीली मिट्टी रख कर चलते हैं।

नागराज की लम्बाई 8 से 12 फुट तक होती है, पर 15-16 फुट की लम्बाई के नागराज भी पाए गए हैं। यदि कोई आदमी मोटर में बैठा हो, तो वह फन फैला कर इतना ऊंचा खड़ा हो जाता है कि आदमी के सर पर वह आसानी से काट सकता है। इतना बड़ा सांप और इतना ऊंचा खड़ा हो जाए, तो उसके आतंक का क्या ठिकाना!

पर नागराज मैदानी इलाके का सांप नहीं है । वह तो घने जंगलों के तटवर्ती स्थानों का, जहां वर्षा अधिक होती है, सांप है । इसलिए यह उत्तर भारत में असम, बंगाल और हिमालय की तलहटी के इलाके में तथा दक्षिण भारत के घने जंगलों में पाया जाता है ।

कहा जाता है कि नागराज कभी-कभी अकारण ही हमला कर देता है । यह बात निस्संदेह ठीक है, पर आक्रमण वह अपने हिसाब से खतरा समझ कर ही करता है । इसकी खुराक खास तौर से अन्य सांप ही हैं । करैत और काला सांप भी इससे नहीं बचते । नागराज अपना फन फैला लेता है, पर नाग की तरह फन पर कोई चिन्ह नहीं होता । पूरे जवान नागराज का रंग उस क्षेत्र की घास-पात से मिलता-जुलता होता है । पीले, हरे, भूरे, और काले रंग पर पीली और सफेद पटरियां-सी पड़ी होती हैं । गले का रंग हल्का पीला या मक्खन जैसा

नागराज

दुनिया के अत्यधिक ज़हरीले सांपों में दो प्रकार के सांप ही सबसे अधिक खतरनाक हैं। एक तो, अफ्रीका का मम्बा, और दूसरा, हमारे देश का नागराज, जिसे अंग्रेज़ी में 'किंग कोबरा' कहते हैं। नागराज मम्बा से अधिक खतरनाक होता है या मम्बा नागराज से अधिक, इसके बारे में मतभेद है। कई जानकारों के मत से नागराज अधिक खतरनाक होता है और कई जानकारों के मत से मम्बा अधिक खतरनाक है। पर मम्बा के विषय में लिखा हुआ है कि जिस क्षेत्र में वह रहता है, वहां के लोग शेर से भी अधिक मम्बा से डरते हैं। अपने क्षेत्र में मम्बा पशुओं तक को नहीं आने देता, अकारण ही आक्रमण करके मार देता है। मम्बा की चपेट से ही आदमी मर जाता है। मम्बा पेड़ पर बैठा रहता है और खोपड़ी पर काट खाता है। इसलिए अफ्रीका के आदिम निवासी मम्बा के क्षेत्र में सिर पर गीली मिट्टी रख कर चलते हैं।

नागराज की लम्बाई 8 से 12 फुट तक होती है, पर 15-16 फुट की लम्बाई के नागराज भी पाए गए हैं। यदि कोई आदमी मोटर में बैठा हो, तो वह फन फैला कर इतना ऊंचा खड़ा हो जाता है कि आदमी के सर पर वह आसानी से काट सकता है। इतना बड़ा सांप और इतना ऊंचा खड़ा हो जाए, तो उसके आतंक का क्या ठिकाना!

पर नागराज मैदानी इलाके का सांप नहीं है। वह तो घने जंगलों के तटवर्ती स्थानों का, जहां वर्षा अधिक होती है, सांप है। इसलिए यह उत्तर भारत में असम, बंगाल और हिमालय की तलहटी के इलाके में तथा दक्षिण भारत के घने जंगलों में पाया जाता है।

कहा जाता है कि नागराज कभी-कभी अकारण ही हमला कर देता है। यह बात निस्संदेह ठीक है, पर आक्रमण वह अपने हिसाब से खतरा समझ कर ही करता है। इसकी खुराक खास तौर से अन्य सांप ही हैं। करैत और काला सांप भी इससे नहीं बचते। नागराज अपना फन फैला लेता है, पर नाग की तरह फन पर कोई चिन्ह नहीं होता। पूरे जवान नागराज का रंग उस क्षेत्र की घास-पात से मिलता-जुलता होता है। पीले, हरे, भूरे, और काले रंग पर पीली और सफेद पटरियां-सी पड़ी होती हैं। गले का रंग हल्का पीला या मक्खन जैसा

होता है । नागराज के बच्चे बिल्कुल काले होते हैं और पूंछ तथा शरीर पर पीली या सफ़ेद गड़रियां होती हैं ।

नागराज का काटा आदमी कुछ ही घंटों में मर जाता है, पर स्वभावत: यह आदमी को देख कर भाग जाना पसन्द करता है। नागराज को कहीं-कहीं राजसांप या कालिंग भी कहते हैं ।

नाग (काला सांप)

हमारे देश में ठंडे स्थानों को छोड़ कर नाग सब जगह पाया जाता है । करैत, काले सांप से भी अधिक विषैला होता है, पर लोग करैत, धोबिया (वाइपर) एवं अन्य विषधर सांपों की अपेक्षा काले सांप से बहुत डरते हैं । कारण यह है कि काला सांप क्रोधी होता है और छेड़े जाने पर फुफकार मार कर मुकाबले को तैयार हो जाता है । वैसे यह आदमी से भागता है और बिना घेरे पकड़ाई देना नहीं चाहता । नाग फन इसलिए फैलाता है कि बिना फन फैलाए वह काट ही नहीं सकता ।

काले सांप की औसत लम्बाई 3-4 फुट होती है, पर किताबों में तो 7 फुट तक के काले सांपों का लेखा है । काले सांप अथवा और किसी ज़हरीले सांप के बारे में यह जानना आवश्यक है कि ज़हरीले सांपों के दांतों की एक ही पंक्ति होती है और अन्त में दो बड़ी कीलें होती हैं । इसलिए जब सांप काट खाए, तब कटी जगह निशान देख कर यह आसानी से मालूम हो जाता है कि किसी विषधर ने काटा है या विष रहित सांप ने । जब बिना ज़हर वाला सांप काटता है, तब दोनों ओर छोटे-छोटे दांतों की दुहरी पंक्ति बनती है और

जहरीले सांप के काटने पर दांतों की एक ही पंक्ति बनती है और पंक्ति के छोरों पर कीलों के एक या दो मोटे छेद होते हैं। ये कीलें ही जहर पहुंचाती हैं। कीलें डाक्टर की इंजेक्शन की सुई के समान खोखली होती हैं। जब कीलें गड़ जाती हैं, तब कीलों से लगी जहर की थैली दबती है और विष शरीर में चला जाता है। जहर की घातक मात्रा पहुंचने पर दो घंटे से लगा कर छः घंटे तक के भीतर व्यक्ति मर जाता है। काले सांप की एक बार की पूरी भरी जहर की थैली में पन्द्रह आदमी मारने योग्य विष होता है।

कुछ लोगों को भ्रम है कि काले साप के बच्चों मे जहर नहीं होता। पर संपोरे (छोटे बच्चे) में जन्म से ही विष होता है और बड़े काले सांप की अपेक्षा वे क्रोधी तथा गतिशील भी अधिक होते हैं। एक दूसरा भ्रम काले सांप के बारे में यह है कि वह सपेरे की बीन से मोहित हो जाता है। असली बात यह है कि सांप के बाह्य कान नहीं होते, इसलिए वह इन अर्थों में बहरा होता है कि वायु द्वारा कोई शब्द नहीं सुन सकता। हां, धरती पर कोई धमाका हो, तो जमीन में वह गति उसके शरीर को छू लेती है और सांप सचेत होकर चला जाता है या आक्रमण के लिए तैयार हो जाता है। संस्कृत में सांप को 'चक्षुश्रवा' इसीलिए कहा गया है कि वह बाहरी कानों से नहीं सुनता। गांववाले बरसात के दिनों में लाठी को खट-खट करके इसीलिए चलते हैं कि लाठी का धमाका सांप अनुभव कर ले और भाग जाए। संपेरे बीन दाएं-बाएं करते हैं। सांप बीन को नजर में रखने के लिए इधर-उधर होता है। यह बात निर्विवाद रूप से सिद्ध हो चुकी है कि सांप बदला लेता है। इस बदले की बात को लेखक ने कई बार आज-

माया है । गांव में सांप मार कर कभी भी घसीट कर नहीं ले जाते । उठा कर दूर फेंकते हैं । घसीट कर ले जाने में कभी-कभी जोड़े का दूसरा सांप घिसटन पर आकर ले जाने वाले की गंध पर चला आता है । जंगली जानवरों, कीड़ों-मकोड़ों और सांपों की घ्राण-शक्ति बड़ी अद्भुत होती है । लेखक ने काले सांप और करैत सांप में यह बात आज़माई है । जान-बूझ कर काला सांप मार कर घसीट कर खेत में फेंका, फिर निगरानी रखी । दूसरा सांप लगातार कई दिनों तक छिप-छिप कर लेखक की चारपाई के पास तक आया । पहले से प्रबन्ध था, अतः मार दिया गया ।

काला सांप अगर रक्तवाहिनी नस पर काट ले, तो ज़हर का असर बड़ी जल्दी होता है । ज़हर का असर होने पर आदमी खड़ा नहीं होना चाहता । वह लेटता है, आंखें बन्द होने लगती हैं, नकसीर फूट जाती है, लार टपकने लगती है, दिमाग पर सीधा असर होता है और दम घुट कर आदमी मर जाता है । सांप के काटे का इलाज थाली बजाना नहीं, वरन् डाक्टर से ज़हर-निरोधक इंजेक्शन लगवाना है ।

सांप शीतनिद्रा में जाता है और गरमी के शुरू में कोमिल तथा भूखा निकलता है । सांपिन बारह से चालीस तक अंडे देती है, जो दो इंच लम्बतरे सफेद रंग के होते हैं और दो महीनों में सेये जाते हैं । अंडों में से आठ-दस इंच लम्बे छोटे बच्चे निकलते हैं और काले सांप की तरह ही पूरे ज़हरीले होते हैं । काला सांप टूटे मकानों, दरारों, बिलों और खेतों में रहता है । अपना बिल यह नहीं बनाता,

बने-बनाए बिलों को पसन्द करता है। कीलें तोड़ी जाने पर फिर जम आती हैं।

लोग कहते हैं, नेवले और काले सांप की लड़ाई में जब काला सांप नेवले को काट लेता है, तो नेवला दवा लगा लेता है। पर यह भ्रम ही है। अगर काला सांप काट ले, तो नेवला बच नहीं सकता। हां, काला सांप नेवले की खुराक है और नेवला उसके पेच में न आकर उसे मार कर खा जाता है।

करैत

हमारे देश में यों तो दस प्रकार के करैत होते हैं, पर मुख्यतया उसके दो भेद हैं। एक तो, साधारण करैत और दूसरा गण्डेदार

करैत। साधारण करैत का ज़हर काले सांप से तिगुना ज़हरीला होता है और गण्डेदार करैत का ज़हर काले सांप के ज़हर से सोलह-गुना ज़हरीला होता है। करैत लगभग सारे देश में पाया जाता है। यों तो कभी-कभी काफी बड़े करैत भी मिल जाते हैं, पर साधारणतया करैत छोटा, तीन-चार फुट का, सांप है। काले सांप की तरह करैत सीधा नहीं होता। छेड़खानी करने पर वह अपने फन को अपने शरीर के नीचे छिपाता है और मौका पाते ही काटता है। पैर पड़ जाने पर या दबाए जाने पर भी वह काट लेता है।

स्वभाव से करैत रात में निकलने वाला सांप है । सायंकाल होते ही वह खुराक की तलाश में निकलता है और प्राय: जोड़े में ही रहता है । एक करैत मार दिया जाए, तो जोड़े वाले करैत को भी उसी स्थान पर तलाश करके मारना चाहिए । करैत मकानों में तथा आसपास रहना ही पसन्द करता है । कूड़े-करकट, नालियों छप्पर, स्नानागार, दरारें, चाहे जहां भी वह मिल सकता है । वह मकानों के अंधेरे कोनों में अक्सर मिल जाता है ।

करैत के काटने पर भी वही लक्षण होते हैं, जो काले सांप के काटने से होते हैं । इसके अतिरिक्त, एक लक्षण यह होता है कि पेट में पीड़ा होती है । शायद शरीर के भीतर पेट में खून बहने लगता है । काटा हुआ व्यक्ति कुछ घंटों से लगा कर एक-दो दिन तक में भी मर सकता है । मरने का समय ज़हर की मात्रा पर निर्भर है । भारत में करैत के काटने से सबसे अधिक मौतें होती हैं ।

मादा करैत 6 से 10 तक अंडे देती है, जो डेढ़ इंच लम्बे होते हैं । साधारणतया करैत चमकदार काले रंग का होता है और पीठ पर सफेद महराब-से बराबर-बराबर दूरी पर होते हैं । ये सफेद महराब सिर से थोड़ी दूर पर शुरू होकर पूंछ तक चले जाते हैं ।

गण्डेदार करैत अपेक्षाकृत बड़ा और मोटा होता है और उसकी पीठ पर डेढ़ इंच चौड़े पीले तथा काले गण्डे पड़े होते हैं । देखने में गण्डेदार करैत बड़ा सुन्दर प्रतीत होता है, पर वह बड़ा ही खतरनाक सांप है । भारत में करैत थोड़े-से स्थानों में ही पाया जाता है ।

करैत भी अन्य सांपों की तरह शीतनिद्रा में रहते हैं ।

धोबिया

धोबिया, जिसे अंग्रेजी में 'वाइपर' कहते हैं, अनेक प्रकार का होता है । पर भारत मे उन अनेक प्रकारों में से ग्यारह प्रकार के

धोबिया साप होते है । इनमे से यहां हम प्रमुख दो का ही वर्णन करेंगे । सबसे प्रमुख है 'रसल धोबिया', जिसकी पहचान सन् 1796 में रसल नाम के सज्जन ने की थी ।

रसल धोबिया

इसमें तथा अन्य विषधर सांपो में एक बड़ा अन्तर यह है कि धोबिया अंडे नहीं देता, बच्चे देता है । असल में, मादा धोबिया के पेट मे ही अंडे सेये जाते है । धोबिया के दांत खूब विकसित होते हैं—नाग तथा करैत से बहुत बड़े । बस, डाक्टर की सिरिंज के समान,

एक वार घुस जाने पर ये ढेरों ज़हर तेज़ी से चढ़ा देते हैं। कभी-कभी धोविया अपने विल में वड़े ज़ोरों से घंटों फुफकारें मारता है। इसके फेफड़े और नथुने वड़े होते हैं तथा शरीर मोटा होता है, इसलिए फुफकार की क्षमता इसमें अधिक होती है। धोविया 3-4 फुट लम्वा होता है। इसके शरीर का रंग हल्का भूरा होता है और ऊपरी भाग पर काले रंग की छल्ले जैसी चित्तियां होती हैं। पेट का हिस्सा पीला-पन लिए होता है और छोटी काली चित्तियां वहां भी होती हैं।

रसल धोविया प्रायः रात में ही निकलता है और दिन में छिपा पड़ा रहता है। स्वभावतः धोविया सुस्त होता है और हमला नहीं करता, पर क्रोधित होने पर वह भयंकर हमला करता है। इसका ज़हर काले सांप और करैत जैसा भयंकर नहीं होता, पर वड़े दांतों के कारण वह ज़हर की मात्रा अधिक पहुंचा देता है। धोविया के काटने पर भयंकर दर्द होता है और सूजन हो जाती है। काटा हुआ आदमी थोड़ा ज़हर जाने पर वचाया जा सकता है। ज़हर की मात्रा के अनुसार कुछ घंटों से लेकर कुछ दिनों में इसके काटे व्यक्ति की मृत्यु भी सम्भव है।

फुरसा

फुरसा वहुत क्रोधी डेढ़ फुट लम्वा सांप है। इसे रेतीली जगह पसन्द है। वम्वई में रत्नागिरि ज़िले में यह वहुत होता है। जंगल और घास इसे पसन्द नहीं हैं।

अत्यन्त क्रोधी फुरसा के सिर और दोनों वगलों में आरी-नुमा शल्क होते हैं। नाराज़ होने पर अंग्रेज़ी का आठ (8) जैसा होकर
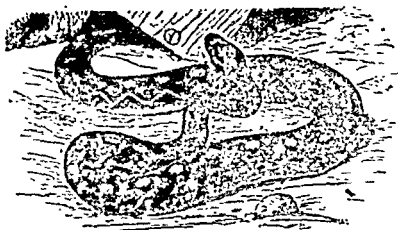
यह अपनी बगलें रगड़ता है और इन शल्कों से आवाज निकालता है। फुरसा के सिर पर तीर जैसा चिन्ह होता है। इसके बच्चे पैदा होते ही चलने लगते हैं।

धामिन

धामिन को बड़जतिया या घोड़ापछाड़ भी कहते हैं। धामिन मैदानी क्षेत्रों का सांप है और उनमें सबसे तेज चलने वाला, सबसे बढ़िया तैराक और पेड़ पर चढ़ने वाला है। धामिन की औसत लम्बाई 6 फुट होती है, पर पुराने धामिन सांप 8-10 फुट के भी होते हैं। यह बिना विष का सांप है, इसलिए इसके दांतों की दो पंक्तियां होती हैं। इसके शरीर का रंग भूरापन या हरापन लिए होता है। पेट सफेद और पिलछौंह तथा पीठ पर चारखाने-से होते हैं। छोटे बच्चे भी वैसे ही होते हैं—बस, उनका रंग जरा राख का-सा और होता है।

धामिन के विषय में कई भ्रम फैले हुए हैं। एक तो यह कि धामिन काले सांप के खानदान का है और उससे भी अधिक ज़हरीला है। दूसरा भ्रम यह है कि वह रात में गाय के थन से मुंह लगा कर दूध पी जाता है और तीसरा भ्रम यह है कि धामिन गायों और भैंसों की नाक में पूंछ डाल कर उन्हें मार डालता है। पर यह जानना ज़रूरी है कि इसमें तनिक भी विष नहीं होता। आदमी से यह भागता है और मुकाबला करने पर ही आक्रमण करता है। काटने के बाद यह आदमी के उस अंग पर गुंजलकें कसता है। नेवला इसे भी मार डालता है। पर कभी-कभी घात लगने पर यह भी नेवले को पकड़ कर गुंजलकों में भींच कर मार देता है।

धामिन सांप किसानों का बड़ा मित्र है। यों कहना चाहिए कि जितने भी विषरहित सांप हैं, वे सब किसानों के मित्र हैं, क्योंकि वे खेती के भयंकर शत्रु चूहे, गिलहरी, आदि को खाते हैं। धामिन चिड़ियां और छिपकली भी खूब खाता है। चूहे तो इनका विशेष स्वादिष्ट भोजन हैं। इसीलिए धामिन को चूहा-सांप भी कहते हैं। धामिन खेतों की मेंडों के बिलों, पुराने मकानों और दरारों में रहता है। धामिन की आदत दिन में निकलने की है, अतः यह मारा अधिक जाता है, जब कि इसे बिल्कुल नहीं मारना चाहिए, क्योंकि यह खेती के लिए बहुत लाभदायक है।

धामिन सांप सारे भारत में पाया जाता है और पहाड़ों पर भी गरमियों के दिनों में छः-सात हज़ार फुट की ऊंचाई तक मिल जाता है। अन्य सब सांपों की तरह धामिन भी शीतनिद्रा में सोता है।

दुमुंही

दुमुंही, जिसे अंग्रेजी में 'अर्थ स्नेक' कहते हैं, दो प्रकार की होती है। एक तो, थोड़ी-सी पूछवाली, जिसे रसल साहब के नाम पर रसल दुमुंही कहते हैं, और दूसरी, जौन दुमुंही जिसके पूछ नहीं होती और जो दोनों ओर एक-सी मोटी होती है। दुमुंही विषरहित सांप है और यह गति में बहुत सुस्त है। यह आदमी को देख कर भागती नहीं है, वरन् धीरे-धीरे रेंगती रहती है और निकट जाने पर बिल्कुल सिकुड़ कर बैठ जाती है। पकड़ कर उठा लेने से भी यह नहीं काटती, पर क्रोधित किए जाने पर आक्रमण कर देती है। दुमुंही कितनी भी सीधी हो, यदि उसे पानी में फेंक दिया जाए, तो बाहर निकल आती है और एक-दो बार इस तरह तंग किए जाने पर मुंह फाड़ कर दौड़ती है। दुमुंही घरों में चूहे खाने आ जाती है। स्वभावतः दुमुही बालू और मिट्टी में छिप कर रहना पसन्द करती है और कम गहरे बिलों में रहती है।

नेवला, जो धामिन और काले सांप जैसे फुर्तीले सांपों को मार कर खा जाता है, दुमुंही को नहीं मार पाता। दुमुंही के गरदन नहीं होती, शरीर का भाग ही सिर होता है। हमने दसियों बार दुमुंही को नेवलों के मार्ग में रखा है, पर नेवले को देख कर यह अपना सिर अपने शरीर की गुंजलकों में छिपा लेती है। नेवला दूसरी ओर से आक्रमण करता-करता थक जाता है। पर दुमुही धैर्यपूर्वक सब सहती हुई भी अपना मुंह नहीं निकालती—घायल होती रहती है, पर टस-से-मस नहीं होती। आधे घंटे तक हमला

करते-करते नेवला थक कर चूर होने लगता है, तब मौका पाकर यह कहीं सरक जाती है।

दुमुंही के विषय में एक हास्यास्पद बात यह प्रसिद्ध है कि वर्ष के छः मास वह एक ओर मुंह रखती है और शेष छः मास दूसरी ओर; और दीपावली के अवसर पर सिर बदलती है। इसका भोजन चूहे-चुहियां, मेंढक आदि हैं।

अजगर

अजगर को चित्ती सांप भी कहते हैं। यह एक भारी-भरकम सांप है, जिसकी लम्बाई आठ फुट से सोलह फुट तक होती है। अजगर तीस फुट तक लम्बे हो जाते हैं, पर इतने लम्बे अजगर बहुत कम मिलते हैं। बड़े अजगर का वज़न तीन मन तक होता है।

अजगर ढलवां पहाड़ियों, नम और गरम जंगलों तथा पानी के किनारे रहना पसन्द करते हैं। अजगर प्रायः रात में ही निकला करते हैं। गरमी के दिनों में इनका शिकार खेलने का ढंग यह होता है कि पानी के स्थानों में, जहां जानवर पानी पीने आते हैं, अजगर छिप जाता है, और गीदड़, लोमड़ी, हिरन, कांकड़ आदि जैसे ही पानी पीने आते हैं, वह उन्हें बिजली की-सी तेज़ी से पकड़ कर अपनी गुंजलकों में दाब लेता है। जानवर की हड्डियों का भुरता हो जाता है। जब वह बिल्कुल चकनाचूर हो जाता है, तब अजगर अपने मुंह से एक तरल चिकना पदार्थ निकाल कर उस पर लपेट कर धीरे-धीरे समूचा जानवर सटक जाता है।

अन्य सांपों की भांति इसके भी जबड़ा नहीं होता, इसलिए

इसका मुंह इतना फैल जाता है कि साधारण व्यक्ति कल्पना नहीं कर सकता। एक-दो बार बाघ तक को अजगर ने निगला है, ऐसे भी समाचार मिले हैं। गरमी के दिनों में शिकारियों को पहाड़ियों और पठारों पर, जहां पानी हो, सम्भल कर चलना चाहिए, क्योंकि मार्ग में अजगर के मिलने की सम्भावना हो सकती है। यदि भूल से भी आदमी का पैर पड़ गया, तो अजगर के लिए फौरन लपेट कर तोड़ डालना मामूली-सी बात है। एक बार धौलखेड़ में एक अजगर को लेखक ने क्रोधित होकर एक गाय को पकड़ते देखा। अजगर बैठा था। गाय ने उसे मार्ग से हटाना चाहा। बिगड़ कर वह गाय पर टूट पड़ा और गाय की गरदन में मुंह गड़ा कर अपने भारी और मोटे शरीर में गाय को कस लिया। गाय गिर पड़ी और अजगर ने गाय

की हड्डियां तोड़ दीं। गाय गाभिन थी और उसका अर्ध-विकसित बच्चा निकल पड़ा।

अजगर पेड़ पर चढ़ कर भी शिकार खेलते हैं। पूंछ के पिछले भाग को वे शाखा में लपेट लेते हैं और नीचे से बेखबर निकलने वाले जानवरों को झपट्टा मार कर पकड़ लेते हैं। जहां अजगर रहते हों, वहां पेड़ों के नीचे सम्भल कर चलना चाहिए। अजगर तो बन्दर और लंगूर जैसे चालाक जानवर को भी पकड़ लेता है। झीलों के किनारे अजगर कभी-कभी ऊदबिलाव भी बड़ी आसानी से मार लेता है।

एक बार में मादा अजगर आठ से लगा कर सौ तक अंडे देती है, जो बत्तख के अंडों जैसे होते हैं—साढ़े-तीन इंच लम्बे तथा ढाई इंच चौड़े। अंडे से निकलने वाले बच्चे दो फुट लम्बे होते हैं।